Chapter-6

# षष्ठ अध्याय

# शैलेश मटियानी

# की

# मुस्लिम-संदर्भ

# से

# युक्त

# कहानियाँ

## प्रास्ताविक :

शैलेश मटियानी एक सच्चे भारतीय लेखक हैं। भारतीय लेखक होने के कारण उनके कथा साहित्य में भारत की तमाम-तमाम कौमों और जातियों का प्रतिनिधित्व मिलता है। कुछ समय पहले ''हंस'' में बहस चली थी कि हिन्दी के लेखकों में मुस्लिम-समाज की गैरमौजूदगी खलती है। किन्तु ऐसा नहीं है, प्रगतिवादी जीवन-मूल्यों को लेकर जो भी लेखक चलता है उसके अनुभव की समग्रता में कोई खास जाति या कौम बाकात कैसे रह सकती है। प्रेमचंद, अश्क, उग्र, भीष्म साहनी आदि कई ऐसे कथाकार हैं जिनके कथा-साहित्य में मुस्लिम समाज बराबर उपस्थित है। प्रेमचंद की कई कहानियों में हमें मुस्लिम समाज एवं पात्रों की उपस्थिति मिलती है। उनके प्रथम हिन्दी में प्रकाशित उपन्यास ''सेवासदन'' में लेखक ने अनेक मुस्लिम पात्रों को लिया है उनके परिवेश और भाषागत ''टोन'' के साथ। अब कोई यह इल्जाम लगाये कि उसमें मुस्लिम समाज को गलत तरीके से प्रस्तुत किया गया है, तो इसका तो कोई इलाज नहीं है। अच्छे-बुरे लोग हर कौम में, जाति और संप्रदाय में पाए जाते हैं, ऐसी सूरत में कोई वस्तुवादी लेखक उसके एकांगी

रूप को लेकर कैसे चल सकता है, सिवाय कि वह ''फण्डामेण्टालिस्ट'' हो। और यदि वह ''फण्डामेण्टालिस्ट'' होगा, तो वस्तुवादी नहीं होगा। अब शैलेश के न रहने पर, हिन्दी कथासाहित्य के आलोचक उसे प्रेमचंद से बड़ा न सही, प्रेमचंद के समकक्ष तो मानने ही लगे हैं।'' संभव है कि अगर उन्हें इस तरह से अकेला नहीं किया जाता तो पूरी संभावना थी कि वह एक ऐसे क्रांतिकारी लेखक के रूप में उभरते जो हिन्दी साहित्य में प्रेमचंद से उपर नहीं तो उनके समकक्ष अवश्य होता। यह बात और है कि वह आज प्रेमचंद के बाद के हिन्दी के सबसे महत्वपूर्ण कथाकार हैं। अपनी जिन्दगी के अंतिम दौर में मटियानीजी का झुकाव ''भाजपा'' की ओर हो गया था, इस बात को लेकर प्रगतिवादी-मार्क्सवादी तबका हाय-तोबा मचाता हैं। इसका बराबर जवाब इब्बार रब्बी ने दिया है... ''बार-बार कहा जाता है कि शैलेश भाजपा के करीब हो गए थे, वह संघी हो गए थे। रे भाई। यदि आप एक व्यक्ति को लगातार दुत्कारेंगे तो वह कुछ तो करेगा, कहीं तो जाएगा? जीवन जल की तरह है, वह अपना रास्ता खोज लेता है, वह ऊंचा-नीचा नहीं समान और समतोल रहता है। आप उन्हें अछूत मानते हैं तो भाजपा में नहीं जाएगा तो कहां जाएगा ? लेकिन हम अपने अवसरवादी वामपंथियों के पाखण्ड को क्यों नहीं देखते? फिर जीवन भर शैलेश ने क्या किया, क्या लिखा यह क्यों नहीं देखते? ९० के दशक के अंतिम समय में वह भाजपा के करीब गए, पर हम तो इससे पहले भी उन्हें लगातार दुत्कारते रहे। जब वह भाजपा के करीब नहीं थे तब भी इन्हें हमने कहां अपने पास बैठने दिया? फिर वहां भी उन्होंने क्या किया, यह भी देखिए। वह जीवन के प्रति, साहित्य के प्रति प्रतिबद्ध लेखक रहे। वह भाजपा के करीब थे पर उसके खिलाफ लिखते रहे। वहां भी प्रश्न उठाते रहे तो भाजपा वाले भी उनसे खुश नहीं थे। तो उन्हें जनसंघी कैसे कहें? यदि ऐसा होता तो वहां वे खुश होते, लाभ उठाते, पर ऐसा कुछ नहीं हुआ।''[२]

यह चर्चा यहां इसलिए आवश्यक हैं, क्योंकि जैसा कि ऊपर कहा गया

है मटियानीजी जीवन और साहित्य के प्रति प्रतिश्रुत-प्रतिबद्ध लेखक हैं और उनकी अनेक कहानियां हैं जिनमें हमें मुस्लिम समाज, संस्कृति और सभ्यता का यथार्थ चित्रण उपलब्ध होता है। ऐसी कहानियों में ''मैमूद'' ''रहमतुल्ला'', ''इब्बूमलंग'', ''पत्थर'', ''गोपुली गफूरन'', ''एक कोप चा दो खारी बिस्किट'', ''दो दुखों का एक सुख'', ''गरीबुल्ला'', ''इल्लेस्वामी'', ''हलाल'', ''सिने गीतकार'' आदि की परिगणना कर सकते हैं। इनमें से ''पत्थर'', ''गोपुली गफूरन'', ''एक कोप चा : दो खारी बिस्किट'', ''दो दुखों का एक सुख'' आदि कहानियों की चर्चा अन्यत्र हो चुकी है, तथापि यहां उनके कुछेक मुस्लिम आयामों को यहां रखा जाएगा।

## (१) मैमूद :-

यह कहानी मटियानीजी के एकाधिक कहानी-संकलनों में हमें मिल जाती है। यहां जो उद्धरण लिए गए हैं वे उनके ग्रंथ ''त्रिज्या'' में संकलित है। इसमें मटियानीजी के संस्मरण, लेख और कहानियाँ संकलित है। कहानी-विभाग में कुछेक चुनंदा कहानियाँ हैं, जैसे ''चील'', ''मैमूद'', ''प्यास'', ''प्रेतमुक्ति'', ''इब्बूमलंग'', ''भय'', ''मिट्टी'', ''भविष्य'', ''रहमतुल्ला'' आदि-आदि। इन कहानियों को हम मटियानीजी की श्रेष्ठ कहानियाँ भी कह सकते हैं।

''मैमूद'' इलाहाबाद स्थित खुल्दाबाद लोकेल के मुस्लिम परिवेश की कहानी है। मैमूद जद्दन बीबी का पालतू बकरा है, जिसे वह अपने जी-जान से चाहती है, जैसे वह उनकी औलाद हो। जद्दन बीबी का परिवार-खानदान कभी नामी-गिरामी था। कभी उनके यहाँ नवाबी शानो-शौकत रहती थी, पर अब केवल नाम ही नाम रह गया है। जद्दन बी ''मैमूद'' को लेकर निकल पड़ती है। जिनके यहाँ बकरियाँ होती है वे लोग अपनी बकरियों को फलाने के लिए इस बकरे के पास ले आते हैं। जद्दन बी तब बकरे को खिलाने के वास्ते उनसे कुछ मामूली रकम भी लेती है। इस बकरे के बारे में

एक स्थान पर वह अपनी पड़ोसन रहीमन से कहती हैं...

"अब तुझे यकीन नहीं आयेगा, रहीमन। ये साला तो बिलकुल इंसानों की तरह जज्बाती हैं। ... इंसान जब बूढ़ा हो जाता है, तब कोई ऐसा उसे चाहिए, जो उसके "आ" कहने से आए और "जा" कहने से जाए। दुनिया वालों की दुनिया जाने, सुलेमान की अम्मा। मेरा तो एक यह नामुराद "मैमूद" ही हैं, जिस साले को इस खुल्दाबाद की नबी वाली गली से आवाज लगाऊं कि... मैमूद ! मैमूद ! मैमूद" तो चुगद नखासकोने के कूड़खाने पर पहुंचा हुआ पीछे पलटता है और "बै-बै" करता वो दौड़ के आता है मेरी तरफ कि तू जान, सगी औलाद क्या आयेगी ! बस, साला जब कुनबापरस्ती पे निकलता है, तो मेरी क्या खुदा की भी नहीं सुनेगा। फिर भी आवाज लगा दूं, तो एक बार पलट के जरूर "बै" कर लेगा, भले ही बाद में अपनी अम्माओं की तरफ दूनी रफ्तार से दौड़ पड़े।...."[३]

जद्दन अपने बकरे को इतना चाहती है कि उसकी बातें करते हुए थकती नहीं है। "मैमूद" से उसका जो लगाव है उसके बारे में बताते हुए वह कहती है...."तुम खुद कौन-सी जवान रह गयी हो, रहीमन? आखिर तजुर्बेदार औरत हो। तुम जानो, एक यह बेजुबान जानवर और दूसरे मासूम बच्चे-बस, ये दो है, जो इंसान की उम्र, उसके जिस्म और उसकी खूबसूरती-बदसूरती पे नहीं जाते, बल्कि सिर्फ नेकीबदी और नफरत-मुहब्बत को पहचानते हैं। हमारे शराफत की बन्नो तो तुम्हारे हजार बार की देखी हुई है। खूबसूरती और नूर में उनके मुकाबले की हाजी लाल मुहम्मद बीड़ीवालों या शेरवानियों के हियां भी मुश्किल से मिलेगी, रहीमन। मगर तू ये जान कि मेरा "मैमुद" उसकी शक्ल देखते ही मुंह फेर के, पिछाड़ी घुम देता है। बदगुमान कैती है, नाकाबिले बर्दाश्त बू मारता है और ये कि "अम्मा, हमारे बच्चों की छोड़ देंगी, लेकिन ये बकरा नहीं छूटेगा।"... मैं कैती हूँ, तेरी कमसिनी और खूबसूरती पे लानत है। लाख पौडर-इत्र छिड़के तू, मेरा मैमूद तेरे कहे पे थूक के नहीं देगा।.... जानवर और बच्चे तो इंसान की चमड़ी नहीं,

नियत देखते हैं, नियम। मजाल है कि नवाबजादी के हाथों से एक गस्सा मेरे ''मैमूद'' के मुंह की तरह चला जाए।''[४]

जद्दन रहीमन से कहती है कि पिछले बरस की बकरीद को जुम्मे या जुमेरात के रोज पैदा हुआ था और अब एक साल साढ़े तीन महीने का हो गया है। इस पर रहीमन कहती है कि इसके रान-पुट्ठे देखकर कोई तीन से नीचे का नहीं कूटेगा। बीस-पचीस सेर से कम गोश्त नहीं निकलेगा इस बकरे में। लगता है, रोटी-दानें के अलावा घास से परवरिश की ही नहीं है इसकी। हालांकि ये बातें रहीमन ने मैमूद की तारिफ में ही की थी, लेकिन मैमूद के गोश्त की बात सुनते ही जद्दन लाल-पीली हो जाती है और मारे गुस्से से उसकी त्यौरियां चढ़ जाती है और रहीमन को खरी-खोटी सुनाते हुए कहती हैं:....

''अरी ओ रहीमन ! आग लगे तेरे मुंह में। मतलब निकल गया तेरा, तो मेरे ''मैमूद'' का गोश्त तौलने बैठ गई ? (रहीमन अपनी बकरी फुलाने जद्दन के बकरे के पास उसे लेकर आयी थी और वह काम उसका हो गया था) तेरा खाविन्द तो बढ़ई है, री, ये कसाईयों की घरवालियों की सी बातें कहाँ से सीखी हो ? या खुदा, हया और रहम नामकी चीज इंसानों में रही ही ना। गोश्ततखोरों की नजर और कसाई की छुरी में कोई फर्क थोड़े ना होता है। अरी रहीमन, कहे देती हूँ...आगे से ऐसी बेहूदी बातें ना करना और आइदे से अपनी बकरी कहीं दूसरी जगे ले जाना। कोई ससुरा पूरे खुल्दाबाद में मेरा एक मैमूद ही थोड़े ठीका लिये बैठा है...।''

रहीमन भी कहाँ चुप रहने वाली थी। उसने जद्दन की दु:खती रग पर ही हाथ रख दिया...''अरी जद्दन, अब बड़े घरानों की बेगमों के से तेवर न दिखाओ। बकरा न हो गया सुसरा, हातिमताई हो गया तुम्हारे वास्ते।... वो जो एक मुहावरा हैं, तुमने भी तो सुना होगा बकरे की अम्मा आखिर कब तक दुआएं करेंगी ? और जद्दन, सुनाने वाले को सुनना भी सीखना ही चाहिए। हमसे पूछो, तो हकीकत ये है कि तुम्हारे तो औलाद हुई नहीं।

सौतेलों को न तुमने कलेजे के करीब आने दिया, और न उन नामुरादों से तुम्हारे सीने में दूध उतारा गया। बस, ये ही वजह है कि तुम इस दाढ़ीजार बकरे को ''मेरा मैमूद, मेरा मैमूद'' पुकार के अपनी जलन बुझाती हो....।''[६]

इस बात पर जद्दन कुछ-कुछ ढीली पड़ती है। वह रहीमन से कहती है....''सुलेमान की अम्मा, इतना मैं भी जानती हूं कि बकरे को आखिर कटना ही कटना है। कसाइयों से कौन-सा बकरा बचा है आज तलक ?...मगर मेरी इतनी इल्तजा जरूर हैं परवर दिगार से, मेरी नजरों के सामने न कटे।....शराफट के अब्बा से कै भी चुकी हूँ कि इस नामुराद को जब बेचने लगो तो पहले शहर का ....कम से कम मोहल्ले का फासला जरूर रखना ... और वह तेरी बात में जरूर मान लेती हूँ कि खुदा के यहाँ बकरे की अम्मां की दुआ बहरे के कानों में अजान है। यह भी ठीक हैं, सौतेलों ने मुझे सगी अम्मा की-सी इज्जत नहीं बख्शी, यह कैसा सरासर झूठ बोलके दोजख में जाना होगा। मगर मुहब्बत तो मुझे इस जानवर ने दी, अम्मा अब्बा ने दी होगी, तो दी होगी।''[७]

इस प्रकार यह कहानी जहां मैमूद की है, जद्दन से उसकी बेपनाह मुहब्बत की हैं, वहाँ जद्दन के तृषित मातृत्व और प्यार की चाहत की भी है। जद्दन मैमूद को सगे बेटे से ज्यादा चाहती है और मैमूद भी जद्दन के आसपास मंडराता रहता है। जद्दन को सच्ची मुहब्बत मैमूद से ही मिली परन्तु रहीमन की वह बात जल्द ही रंग लायी कि बकरे की अम्मां कब तक खैर मना सकती है। कहां तो जद्दन उसे शहर या मुहल्ले के बाहर बेचना चाहती थी, अगर बेचने की नौबत ही आ जाए, और कहाँ मैमूद को उसके घर वाले ही हलाल करने की बात करते हैं। बेटे जहीर के लिए रायबरेली से रिश्ता आया है। घर में तंगदस्ती चल रही है। गोश्त का भाव बाजार में दस रूपये किलो चल रहा है। लिहाजा मैमूद को ही हलाल करने की बात आती है। जद्दन बहुतेरा विरोध करती है, रोती-गाती हैं, पर उसकी एक नहीं चलती। ऐसा नहीं कि उसका शौहर अशरफमियाँ उसकी बात को नहीं

मानता, पर घर की माली हालत इतनी नाजुक हैं कि मेहमानों की आवभगत के लिए मैमूद को हलाल किया जाता है।

घर में मेहमानों के आवभगत हो रही हैं। खाने के बाद कोई मजहबी किस्म की फिल्म शहर में लगी हुई हैं, उसे देखने जाने की बातें हो रही हैं। लेकिन जद्दन मुँह फुलाकर एक कोठरी में बैठी है। शराफत की बहू शहनाज को कह देती हैं...''मेरे लिए दो रोटियाँ यहीं भिजवा देना और याद रखो, गोश्त-वोश्त या कबाब-पुलाव कुछ न भिजवाना। मेरा न जी ठीक है न पेट। जुबैद को जरा भेज देना, मैं उससे कुछ मंगवा लूंगी। तुम सब लोग खूब आराम से खाओ-पिओ। मेरी फिक्र ना करना। अब तो कोई सर्दी ना रही। मैं यही सो जाऊंगी। अपने अब्बा हुजूर से सलाम कैना और कैना कि सुबह में दुआ-सलाम होगी, अभी अम्मां का जी ठीक नहीं।''[८]

जद्दन उस रोज कुछ भी नहीं खाती हैं। रोती ही रहती हैं। अशरफमियां के समझाने पर जहरबुझी आवाज में बोल उठती हैं...''तुम बेदर्दों से ये भी ना हुआ कि मैं अव्वल दर्जे की गोश्तखोर औरत जब कै रही हुँ कि बेटे ''शहनाज, हमें गोश्त-वोश्त ना देना''। तो इसकी कोई तो वजह होगी ? और जहीर के अब्बा, इंसान दाढ़ी बढ़ा लेने से पीर नहीं हो जाता। तुम मुझे ये क्या नसीहत दोगे कि सभी बकरों के दो सींग होते हैं ? इतना तो नादीदा भी जानता है। दुनिया में तो सारे इंसान भी खुदा ने दो सींग वाले बकरों की तरह, दो हाथ-दो पांव वाले बनाये? लेकिन औरत तो तभी रांड़ होती है, जब उसका अपना खसम मरता है? अम्मा तो तभी छाती कूटती हैं जब उससे उसका बच्चा जुदा होता है?.. ये भी मैं जानती हूँ कि मेरे मैमूद में कोई सुर्खाब के पर नहीं लगे थे, मगर इतना जानती हूँ कि मेरी तकलीफ जितनी वह बदनसीब समझता था, न तुम समझोगे, न तुम्हारे बेटे...। समझते होते तो क्या किसी हकीम ने बताया था कि मेहमानों को इसी बकरे का गोश्त खिलाना, और तुम भी भकोसना, नहीं तो नजला-जुकाम हो जायेगा ? जहीर के अब्बा, उसूलों का तो तुम पे टोटा नहीं, मगर इस वक्त हमें बहुत जलील

न करो। शहनाज से कहो, एठा ले जाए, नहीं तो फेंक दूंगी ऊपर। जुबैद से कह देना, अब पंडित के हियां से सब्जी लाने की भी कोई जरूरत ना रही। मेरा पेट तो तुम लोगों की नसीहतों से भर चुका।''[९]

इस प्रकार यह एक मार्मिक कहानी है। इसमें मुस्लिम समाज की सभ्यता और रीति-रिवाजों के कई संदर्भ आए है। भाषा में उर्दू शब्दावली और मुस्लिम लहजा (टोन) उस समाज को यथार्थत: उकेरने में सक्षम हैं। ''शोरबा'', ''मुल्ला दोपियाजा'', ''जज्बाती'', ''नामुराद'', ''कुनबापरस्ती'', ''खूबसूरती'', ''बदसूरती'', ''गोश्त'', 'गोश्तखोर', ''खुराफात'', ''रानें'', ''सीना-चाप-गरदन की बोटियां'', ''शर्मशार'', ''पुलाव'', ''दस्तरखान'', ''नादीदां'', ''अव्वल दर्जे की गोश्तखोर औरत'', ''बदनसीब'', ''बेवक्त'', ''नजला-जुकाम'', ''तसब्बुर'', ''नसीहतें'' आदि शब्द, ''मुल्ला दोपियाजी की तरह दाढ़ी हिलाना'', ''न पिद्दी न पिद्दी का शोरबा'', ''कुनबापरस्ती पर निकलना'', ''मीरगंजवालियों की-सी चमक'', ''किसी के कहे पर थूकना भी नहीं'', ''मुंह में आग लगना'', ''बकरे की अम्मा आखिर तब तक दुआएं करेंगी'', किसी के सीने में दूध उतरना, ''किसी के हगने-मूतने की बातें भी याददाश्त का हिस्सा बन जाना'', ''रोटी गले के नीचे न उतरना, ''भकोसना'' जैसे मुहावरे और कहावतें ''हियां'' (यहाँ ) ''बकरीद, मूं में'' (मुंह में) ''कौन'' (कहना) ''पंड़त'' जैसे शब्द और मुसलमानी टोन''[१०] ''अजान'' की पुकार, नमाज पढ़ना, खाने के लिए दस्तरखान बिछाना, मेहमानों का स्वागत बिरयानी, पुलाव, कबाब से करवाना और उसके लिए बकरा कटवाना या मुर्गियां हलाल करना, बहू के पिती को दुआ-सलाम बोलना जैसी बातों से मुस्लिम सभ्यता और संस्कृति का अहसास हमें होता है।

## (२) रहमतुल्ला :-

यह कहानी भी ''त्रिज्या'' संकलन में संग्रहीत हैं। इसके

अतिरिक्त और भी दो-तीन कहानी संग्रहों में वह समाविष्ट हुई हैं। यह रहमतुल्ला नामक एक अनाथ बच्चे की कहानी हैं। नाम तो उसका रहमतुल्ला है, पर किसी को भी उस पर रहम नहीं आता है और नसीब का इतना हेठा है कि अगर किसी को उस पर रहम आ भी जाता है, तो वह जल्द ही खुदा को प्यारा हो जाता है। रहमतुल्ला खिमुली का बेटा है। खिमुली के भाई का नाम उदेराम हैं, अतः वह कुमाऊं प्रदेश की शिल्पकार, डोम या वाल्मीकि जाति का होगा, ऐसा अनुमान लगा सकते हैं, क्योंकि कुमाऊं प्रदेश में अनुसूचित जाति। शिड्युल्ड़ कास्ट...एस.सी.। के लोग अपने पीछे "राम" शब्द लगाते हैं। खिमुली विधवा हो जाती है। उसके बाद वह अल्मोड़ा के फतेउल्ला चूड़ीवाला से दुबारा निकाह पढ़ लेती हैं और इस प्रकार मुस्लिम धर्म अंगीकार कर लेती है। रहमतुल्ला खिमुली और फतेउल्ला की औलाद है। परन्तु रहमतुल्ला के जन्म के बाद दोनों की मृत्यु हो जाती है और रहमतुल्ला अनाथ हो जाता है। इतना ही उसके माथे पर "मां-बाप" को भकोसने वाले का लेबल भी लग जाता है। लावारिस और यतीम रहमतुल्ला पर मसीहा मस्जिद के अजानची मुसीफुदौला की रहमनजर पड़ती है। रहमतुल्ला मस्जिद के सोपानों के पास खेल रहा था, तब मुसीफुदौला के पहले तो कदम बाड़ेखोला मुहल्ले की और उठते है, लेकिन बशीरन चाची उनको बताती है कि वह तो खिमुलीजान का बेटा हैं। तब मियां मुसीकदौला के कदम अपनी कोठरी की और मुड़ जाते हैं। पर एक दिन खेल में लगे रहमतुल्ले को डबलरोटी का टुकड़ा पकड़वाने में उनका पैर मस्जिद की सीढ़ियों से ऐसे फिसला कि सीधे उनको कब्रिस्तान ले गया। रहमतुल्ला फिर अनाथ और यतीम हो गया।

मुसीफुदौला की मृत्यु के बाद कुछ लोग रहमतुल्ला के चाचा करीमुल्ला के पास पहुँचे कि उसके भाई फतेउल्ला और भावज खिमुली की मौत के बाद अब यह बच्चा उनकी नैतिक जिम्मेदारी है। करीमुल्ला दो आँखों की शरम के मारे कुछ कह नहीं सकते, हालाँकि उसे अपनी बीबी

गुलशनबीबी का स्वभाव मालूम हैं। लिहाजा डरते-डरते बाहर से ही उसे पुकारते हैं....''अरी शौकत की अम्मा ! ये गबरू चाचा क्या कैरिये हैं, कुछ सुना तुमने? मैंने तो कल ही तुमसे ये इल्तजा की थी कि फत्ती के बेटे कोहींी ले आओ।''[११] इसके उत्तर में गुलशन बीबी चाचा भी सुने इस तरह कहती हैं....'' ''अजी जो ये पौन दरजन खुद के जमा कर रखे हैं, पहले इनके लिए तो टुकड़े जुटा लो पूरे, बाद में औरों की परवरिश की चक्कर में पड़ना। ''ही ले आओ'' कहना बहुत आसान हैं, मगर रोटी-कपड़ा जुटानें में सात जगह से कटी-चिरी जाती है। गबरू चाचा से ये क्यों नहीं कैते कि वो कौन-सी जात का छोकरा है ! अजी, असल मुसलमानी का होता, तो घर से बाहर कदम न निकालता। मगर डोमिनी की औलाद है, चोट्टी ! सुसरा दिन-भर आवारागर्दी करने में रैवे हैं। अजी, मैं तो यूं कहूँ के जो सुसरा इस लड़कपन में ही ऐसे दर-ब-दर डोलना फिरे है, कहीं जवानी पे आ गया.... तो न जाने क्या-क्या गुल खिलायेगा। मुंहजरा बदशकुन तो इतना है कि तीसरे से चौथे पे भी नहीं पहुँचा। तीनों की बिसमिल्ला कर चुका। मैं तो न लाती सुसरी इस चलती-फिरती मुसीबत को अपने बाल-बच्चों वाले घर में। जिनके दीदे नरम होते हों, उन्हीं को मुबारक हो।''[१२] पर उतने में खिमुली का भाई उदेराम रहमतुल्ला को लेने पहुंच गया। गुलशन बीबी को तो जो चाहिए था, मिल गया। कुछ समय पहले की राती-तीती गुलशन एकदम मीठी हो जाती है .... ''ले जा रे भय्ये ! आखिरी तेरे ही खिमुली दीदी की निशानी है। बेटा भी बिलकुल शहजादे सरीखा है। क्या करूँ, मेरा दिल तो यही कैता है, जहां ये पौन दरजन अपने है, एक ये और भी सही। मगर हमारे घर की अंदरूनी हालत या तो खुदा को मालूम है, या मुझे ही।''[१३]

उदेराम कुछ भावुक किस्म का धर्म-भीरू आदमी है। खिमुली के बेटे को वह अपना ही खून समझता है। उसे लेकर वह तरह-तरह के खयाली पुलाव भी पका लेता है कि वह उसका नाम बदलकर रतनराम कर देगा। दो-चार बरस में तो वह गाय-भैंसों की पूंछ मरोड़ने लगेगा। बाद में रंदे-वसूलों

की कारीगरी भी सिखा दूँगा। पर रहमतुल्ला के भाग्य में रतनराम कहलाना नहीं लिखा था, सो उदेराम के घर पहुँचते ही उसकी घरवाली उस पर बरस पड़ती है..."ठैरो हो, जरा उस मुसलिये को कंधों पर से उतार के, उधर ही रखो। और इस समय तो खैर रात हो गई है... कल सवेरे ही इसको जहाँ से लाये हो, वहीं पहुँचा के आओ। इसको तो तुम इस समय ला रहे हो, मगर हमारे बिरादरों में से गंगाराम ससुरजी ने तो आज दोपहर से ही हमारी चिलम में तमाकू पीना छोड़ दिया है, कि उदिया से कह देना, अगर उस मुसल्टे को अपने घर में ठौर दी, तो बिरादरी से बरखास्त कर दिया जाएगा !...तुम्हारी तो मति हरन हो गयी है। ऐसे जी बिलमाने वाले की हमें कोई जरूरत नहीं, जो घर पहुंचने से पहले ही जी का जंजाल बन जाये। बाप रे, मुसल्टों की औलाद से तो हम निपूते ही भले।"[१४]

लिहाजा दूसरे दिन उदेराम रहमतुल्ला को छोड़ने तो गया पर गुलशनबी के सामने जाने की उसकी हिम्मत नहीं हुई, फलत: गिरजे की सड़क के किनारे जो एक सूरदास बैठता था, उसके पास छोड़कर उदेराम चला आया पश्चाताप और प्रार्थना करता हुआ कि है परमेश्वर ! सूरदास बाबा के घट में बैठकर रहमतुल्ले की पालना करना। लोग उनको घंटीवाले बाबा कहते थे क्योंकि उनकी कई सारी घंटियाँ बंधी हुई थी। बाल-ब्रहमचारी होने के कारण शैतान बच्चे उनको "आंडूबाबा" भी कहते थे। रहमतुल्ला उनकी घंटियों को टुनटुनाता हैं। पहले तो बाबा सोचते हैं कि कोई शैतान बच्चा उनको परेशान करने के लिए ऐसा कर रहा है। पर अल्मोड़ा जैसे छोटे शहर में बच्चे की शिनाख्त करने में बाबा को कोई दिक्कत नहीं आयी और शाम तक में उनको ज्ञात हो गया कि फतेउल्ला और खिमुली का यतीम बच्चा उसके पल्ले पड़ा है। पर बाबा सोचते है कि अंधे तो भगवान के बन्दे होते हैं, उनकी कोई अपनी अलग जात थोड़े होती है। मुसलमान की औलाद है तो क्या हुआ, आखिर इंसान की ही तो औलाद है। और बाबा उसे अपने पास रख लेते हैं। पूरे पांच साल गुजर जाते हैं रहमतुल्ला उर्फ रामदास के बाबा

की घंटी टुनटुनाते हुए, पर एक दिन उसकी शामत आती है कि वह मसीहा मस्जिद की उपर वाली सड़क पर बाबा को ले जाता है। घंटीवाले बाबा ने ''अब लों नाच्यो बहुत गोपाल'' की तान ही ली थी कि नंदादेवी के मंदिर का नादिया (सांड़ ) बाबा की तरफ फ्वां-फ्वां नथुने फुफकारता हुआ लपका । नतीजा यह हुआ कि बाबा तो पहुंचे सदर अस्पताल में और रहमतुल्ला फिर जने-जने की रहम का मोहताज हो गया । एक दिन बड़े मियां हुसैन साहब मिल गये रहमतुल्ला को और वे उसे अपने घर ले गए । उनको वैसे भी एक नौकर की जरूरत थी । पर बड़े मियां साहब जितने रहमदिल थे उनकी बेगम गुबदन उतनी ही जालिम औरत थी । दिनभर गधे की तरह काम करवाती थी और खाने के नाम पर जूठन के कुछ रोटी के टुकड़े और एक साबित रोटी देती थी । उस पर रात-दिन लताड़ती रहती थी...''अरे, मेरे मौला । इस ससुर के पेट है कि रामढोल! चोरी का माल उड़ा - उड़ाके चौकोर बक्स-जैसा लग रिया । सेर-डेढ़-सेर तो चने चबा गया, ऊपर से दरजन के बरोबर रोटियां तक साफ करके भी मुआ मेरे मुँह पे ऐसी निगा फिरा रिया, जैसे नोंच के खा जावेगा ।''[१५] इन सब जोर-जुल्मों को बरदाश्त करते हुए भी रहमतुल्ला हुसेनमियां के यहां पांच साल निकाल देता है। पाँच साल के बाद वहाँ से निकाले जाने पर फिर वह मसीहा मस्जिद की बगल में आ गया है। मसीहा मस्जिद के जरा ऊपर ''मसीहा मुस्लिम मार्केट'' है, जहाँ हलाल गोश्त मिलता है। रहमतुल्ला उस बूचड़खाने पर नौकरी करता है। जहां एक और सुबह की नमाज के लिए अजान पुकारी जाती है, वहाँ दूसरी और रहमतुल्ला किसी बकरी या बकरे को हलाल कर रहा होता है और उसकी करूण ''बें-बें-बें'' से पूरा माहौल गमगीन-सा हो जाता है । यहाँ भी लोगों की गालियाँ तो उसे खानी ही पड़ती हैं। नये अजानी सुबराती मियां अपनी कड़कती हुई आवाज में कहते हैं....''अबे अरे, मादरखसम, फुददी के ! ऐन मेरी खुदा की अजान के वक्त बकरियों का गला रेंगता है रे ? कसाई की औलाद, तेरे पालने वालो पे खुदा का कहर गिरे।''[१६] पर सुबरातमियां यह

क्यों भूल जाते है कि उनके यहाँ भी गोश्त तो ''मसीहा मुस्लिम मार्केट'' से ही आता है।

यह है रहमतुल्ला की रामकहानी उसमें एक यतीम और अनाथ बच्चे पर कितना जुल्म ढाया जाता है, उसका यथार्थ और निर्मम चित्र हमें मिलता है। मटियानीजी स्वयं इस प्रकार की जिन्दगी से गुजर चुके हैं, इसलिए उनका अपरागत अनुभव (फर्स्ट हेण्ड एक्सपीरिअन्स) यहाँ काम आया है। ''मेरी तैंतीस कहानियाँ'' की भूमिका में उन्होंने एक स्थान पर लिखा है...''मेरे सामने चाचाजी की शर्त थी, यदि मैं सुबह-शाम, ''शिकार की दुकान'' (गोश्त-मटन की दुकान) में काम करूँ, तो मरा वहाँ रहना सम्भव हो सकता है।... मेरा छोटा भाई स्कूल पढ़ने की उम्र में रामजे हाईस्कूल के सामने की फुटपाथ पर चूरन और मूंगफलियाँ बेचता था और मैं रोज तड़के उठकर, दो-तीन बकरियों की खाल निकालकर, उनका शिकार दुकान में ठीक से लगाकर, उनकी आंतें साफ करने के बाद ही स्कूल जाया करता था और स्कूल से लौटने पर दुकान में बैठकर शिकार (मटन) बेचा करता था।''[१७]

कहानी में मुस्लिम परिवेश और संदर्भ मिलते हैं। ''खयालात'', ''जज्बात'', ''अब्बा'', ''इजाजान'', (मां), ''मादरखसम'', ''खिमुलीजान'', ''कब्रदोज'', ''बन्दोबस्ती-रोजनामचा'', ''तबदीलियाँ'', ''मुंहजरा'', ''बदशकुन'', ''बिस्मिल्ला कर चुकाना'', ''मामूजान'', ''शिनाख्त मसीहा मस्जिद'', ''अजानी'' जैसे शब्द मुस्लिम सभ्यता और संस्कृति को सजीव करते हैं। [१८] तो दूसरी तरफ ''अबे'', फुददी के, 'दे रिया है', ''कैना'' 'लिवा लइये', 'निगा फिरा रिया है', जैसे जुम्ले और ''टोन'' मुसलमानी बोली का परिचय कराते हैं।[१९]

वस्तुतः देखा जाय तो रहमतुल्ला पर किसी को भी रहम नहीं आती। खुदा भी माना उससे रूठ गया है। सच्चा प्यार उसे अपने माँ-बाप, फतेउल्ला और खिमुलीजान, से मिलता है। लेकिन उस समय तो वह दो-ढ़ाई साल का था। माँ-बाप के अलावा सच्ची मुहब्बत उसे मियां मुसीफुदौला और घंटीवाले

बाबा से मिलती है। पर उसकी बदकिस्मती से वे दोनों भी खुदा के प्यारे हो जाते हैं। कहानी में रबर की गेंद का लेखक ने प्रतीक के रूप में उपयोग किया हैं। रहमतुल्ला गेंद से नहीं खेलता, बल्कि नियती रूपी गेंद ही रहमतुल्ला से खेलती रहती हैं। इस कहानी से चेखोव की ''वानका'' कहानी स्मृति में कौंध जाती हे। बाल-मजदूरी का कायदा भले ही हमारे यहाँ हो, पर बाल-मजदूरी सर्वत्र चल रही है, बल्कि कई बार तो ऐसा लगता है कि कम-से-कम इस बालमजदूरी की वजह से उन बेचारे यतीमों को दो वक्त की रूखी-सूखी रोटी तो मिल जाती है। जब तक ऐसे बच्चों की उचित परवरिश की कोई व्यवस्था नहीं होती, सारी आदर्शवादी बातें बेमतलब की लगती हैं।

## (३) इब्बूमलंग :-

''इब्बूमलंग'' मटियानीजी की एक प्रसिद्ध और बहुचर्चित कहानी हैं। यह कहानी भी एकाधिक संग्रहों में संकलित हुई है । यहां पर उसके संदर्भ ''त्रिज्या'' से लिए गए हैं। यह मुंबई के परिवेश पर आधारित कहानी है। इसमें इब्बूमलंग के जीवन के तीन स्तर मिलते हैं...इबादत हुसैन, इब्बू मस्तान और इब्बू मलंग । जीवन की विचित्र परिस्थितियों में पड़कर किसी समय का इज्जतदार इबादत हुसैन मुंबई में इब्बू मस्तान की गन्दी-गलीच जिन्दगी गुजार रहा है। वह भयंकर रूप से गंदा रहता है । शरीर पर मैल के परत-दर-परत जमे रहते हैं। वह फुटपाथों और कूड़दानों पर पड़ा रहता है। उसके मुंह से गालियों की बौछार होती रहती है। इससे वह खुदा को भी नहीं बख्शता है....''हत्त, तेरे रहमोकरम का भी कद्दू मारूं, के पहले तो तकदीर के हाथ में थमा दी गधे की पूंछ से लिखी हुई और अब कूड़ेखाने पर भी चैन नहीं लेने देता हरामखोर...''[२०]

इब्बूमस्तान रोज रहमानी होटल में दर्जनों की गिनती के छोटे-बड़े पतीले और देग घिसता है, तब कहीं जाके करीमुल्ला आर्डरवाला नौटांक दारू और मटर के बराबर चरस हथेली पर रखता है। एक कटोरा बड़े (भैंसे)

का तरीदार गोश्त और एक बड़ी चपाती, खाने के नाट पर इतना ही लेता है इबादत हुसैन, बाकी तो रात को पतीले पोंछने-चाहने से ही पेट कुछ इस कदर भर जाता है कि दूसरे दिन धूप चढ़े तक होश ही नहीं रहता। तरह-तरह के गोश्त के पतीले रात के ग्यारह-बारह बजे होटल के पिछवाड़े के बंद गलियारे में रख दिये जाते थे और करीमहुसैन आर्डरवाला आवाज लगाता था....''मस्तान अबे इब्बू मस्तान''। और तब तहमद के अंदर घुसी हुई चीटियों को टांगों पर ही मसलते हुए तहमद को कमर से ऊपर उठाते हुए कहता है... आरियां हूं , वे करीमुल्ले, आरिया हूँ मादर...''[२१] पहले तो इब्बू मस्तान मुंह पे भी खूब मां-बहन की गालियाँ बकता था, पर जबसे गुलअहमद पठान ने सामने के तीन दांत तोड़ दिये हैं, तब से मुंह-सामने मां-बहन की गालियाँ नहीं बोलता मगर पीठ पीछे तो गालियाँ अपने आप निकल जाती है।

होश संभालने के बाद से मस्तान लगभग इसी प्रकार की यतीमी और लानत भरी जिन्दगी जी रहा है। नींद के अलावा, मस्तान के गरम तवे पर चरस की चिलम चढ़ी रहती है या गंदी गालियाँ । मशक्कन का सिर्फ एक ही काम उसके जिम्मे है, होटल के पतीले देग मांजना। पतीले-देग भी ऐसे-ऐसे कि अच्छे-अच्छों के कल्ले देखते ही ढीले पड़ जाएं । मगर तबीयत उकता जाने तक पतीले देगों में हाथ मार-मार कर बाकी रहा हुआ शोरबा-मसाला चाटने और हड्डियों को चबाने के बाद, जौ नौटांक दारू हलक के नीचे उतार लेता है तो आखिरी पतीली के बाद ही थमता है। इस काम में उसके साथ आवारे कुत्ते भी लगे रहते हैं । चाटने और हड्डियों को चबाते हुए आवारा कुत्तों से न तो उसका जी जरा-सा भी कुढ़ता है, न घिनाता है । उनको भी वह बराबर गालियाँ देता रहता है... अरे, स्सालो, कमीनों ! अपनी अम्मी की टांगों से एक-एक करके चार -पांच इकट्ठे ही बाहर निकलते हो, तब यों भिंडीबाजार के भडुओं की तरहां नहीं थूकते हो एक-दूसरे पे? ईमान मर गया है तुम स्साले कमीनों का, गोश्त के पतीले और कुतिया पर साला हरेक खुदगरज सिर्फ खुद ही चढ़े रहना चाहता है... हरामजादों, तुम

तो इंसानों से भी बदतर हो गये हो।''[२२]

आजकल इन कुत्तों में एक नयी कुतिया आयी है। पता नहीं क्यों पर कुतिया पर मस्तान कुछ अधिक ही महरबान रहता है। उसे देखकर उसे कमाठीपुरा की सुन्दरीबाई की याद ताजा हो जाती हैं। जिसे पहले वह सुन्दरीबाई समझ रहा था, बाद में वह उसकी चचाजाद बहन सईदन निकल आई थी। और जब से सिफलिस की बीमारी से सईदन गुजर गई थी, तब से आज तक मस्तान किसी भी वेश्या के पास गया नहीं था। अपनी इस ''तौबा'' को वह कभी तोड़ता नहीं है। उसके संदर्भ में लेखक की टिप्पणी है...'' लाख गलीच-कमीन है, मगर ईमान का कच्चा कभी नहीं रहा इब्बू मस्तान। माहीम के नबी मौलाने सईदन के मरने के ही साल इब्बू मस्तान को आगाह किया था कि जल्दी से इलाज न करवाया तो उसकी भी वही दुर्गति होगी। उन्होंने काबुल वाले हकीम का नुस्खा भी इबादत हुसैन को बताया था, मगर इब्बू मस्तान ने कसम खाली, तौबा, तौबो, मौलाना। कल का झड़ने वाला सुसरा आज सड़-गल के झड़ जाए, मगर वेजुबान इंसान की तोहमत तो ले ही चुका हूँ, अब बेजुबान जानवरों की बददुआएं न लूंगा, मेरे बुजुर्ग। हियां तो सुसरी इस कमीनी जिन्दगी में यही एक सबक सीखा है कि जिस इबादत हुसैन को हव्वा की बेटी जिन्दगी नहीं बख्श सकी, उसे गधी और कुतिया क्या बख्शेगी?''[२३]

जहां दूसरे कुत्तों को मस्तान गालियों से नवाजता है, वहां इस कुतिया को देखते ही उसके मन में न जाने कैसे- कैसे ख्याल आते हैं। यथा....''आ, हियां चली आ, मेरी भैन !.. कभी-कभी इस नयी कुतिया को देखते ही, इब्बू मस्तान, अपने मशीन के पुर्जों की तरह चलते हुए हाथों को रोककर, प्यार से पुकार लेता है। कुतिया अपनी पूंछ हिलाती हुई, इब्बू मस्तान की टांगों से लग जाती है, तो इब्बू मस्तान एकदम चौंक उठता है, जैसे कोई बहुत बड़ा गुनाह हो गया हो और परे हट जाता है।''[२४]

रात की मशक्कत से निबटता हुआ इब्बू मस्तान फिर खुदा का भी गुलाम नहीं होता। काफी धूप चढ़े उठता है तो खाली डिब्बा लेकर चाय के

होटलों के चक्कर लगा आता है। उसकी विकराल आकृति और वेशभूषा का असर लोगों पर बहुत गहरा पड़ता है। बरसों से नहाने धोने के नाम पर सिर्फ कुल्ला करने की आदत बाकी रह गयी है। गुड़, गन्धक और सड़े हुए गोश्त की जैसी मिली-जुली कुछ ऐसी बदबू मस्तान के सारे शरीर से फूटती है, नजदीक से गुजरने वाले की नाक सनसना जाती है। इस अजीब सी दुर्गन्ध के कारण, जब भी मस्तान टांगें फैला कर सोता है, तरह-तरह की चीटियाँ उसकी पुरानी छतरी के कपड़े से बनी हुई काली नहमद के अन्दर घुसती चली जाती है। मगर अब तो चीटियों के काटने का ऐसा आदी हो चुका है मस्तान कि अबरचे वेन काटे तो उसे चैन न आए।'' अरे, तुम कमीनी चीटियों की जात का मैदा मारू। ''ऐसा कहते हुए वह उनको मसलता रहता है। चीटियों पर अब्बू मस्तान को जो रहम नहीं आता उसका एक कारण इधर पैदा हुआ है। सिर्फ तहमद पहनकर एक पेड़ के नीचे वह पड़ा रहता था। कचड़पट्टी-कूड़ा फेंकने को आने वाली घाटनों और भंगिनों के इंतजार में अलमस्त टांग फैलाए हुए मस्तान को हर समय एक किस्म की गरमी बनी रहती थी, मगर जब से नबीपाड़े की भंगिन थूक गई और चीटियों ने बुरी तरह से एक ही जगह इकट्ठी होकर काटना शुरू कर दिया, तब से जी मारकर, लंगोट लगाकर सोना पड़ता है। नबीपाड़े की भंगिन थूककर चली गई थी, तो अंगुलियों से पोंछ-पोंछ कर, उन्हीं से दाढ़ी को खुजलाते हुए, मस्तान ने नबीपाड़े की तरफ थूक दिया था....'' ''हत्त तेरे बदजात औरत का खसम बनूं.... बतौर इंसान के तो जीने नहीं दिया ससुरियों ने, अब हियां कुत्ते की तरह पड़ा रहता हूं, तो तुम हरामजादियों से अपने खसम का इतना-सा चैन भी नहीं देखा जाता।''[२५]

पर इधर नयी आने वाली कुतिया ने मस्तान की टांगों से लिपटना शुरू किया था, तब से मस्तान ने नबीपाड़े वाली को भी बख्श दिया था... ''ज्जा ससुरी, खुदा करे जैसे तूने मेरी टांगों में थूका, ऐसे कोई तेरी टांगों में न थूके कभी।''[२६] इधर जब से कुतिया पल्ले से लगी है तब से मस्तान की

तबीयत कुछ-कुछ फकीराना हो गई है। जब कभी म्यूनिसिपैलिटी की लावारिसों की लाशों को ढोने वाली गाड़ियों को मस्तान देखता रहता है, अन्दर बर्फ की सिल्लियों के बीच में पड़ी हुई अपनी चचाजाद बनह सईदन की याद हो आती है। और तब इब्बू मस्तान अपनी कीचड़ में धंसी हुई जिन्दा मछलियों जैसी किचकिची आंखों को जोर-जोर से मसलने लगता है और गालियां देने लगता है...."और मूतों, कमीनियों और मूतों स्साले इबादत हुसैन के मुँह पर।"[२७]

और कहानी के इस बिन्दु से इबादत हुसैन की जिन्दगी का तीसरा मोड़ आता है। मस्तान अपने चरस के नशे में डूबा हुआ अनापशनाप बके जा रहा था कि वहां नबीपाड़ा का दादा नागप्पा अपने गुर्गे रहमान के साथ आ धमकता है। मस्तान के इस हुलिये से इन लोगों के दिमाग में एक पैसा कमाने का नया "आइडिया" आता है रहमान मस्तान की कुतिया की पीठ पर छुरा भोंक देता है और वह उसी वक्त दम तोड़ देती हैं। मस्तान जोर से चीख उठता है..."अरे, कसाई स्सालो, अपनी भैन के कटड़े...."[२८]

नागप्पा इब्बू को आंतकित करने तथा पीटने नहीं, बल्कि अपने साथ ले जाने के लिए आया था, मगर मस्तान को कांपते हुए देखकर वह समझ गया था कि कुतिया की मौत का आतंक उस पर छाया हुआ हैं। लिहाजा वह मस्तान से कहता है....."अरे, ओ मस्तान! खामखा काहे को तूफान खड़ा कर रिया है, यार। हम कोई तेरे दुश्मन थोड़े है? हम तो स्साले, तुझे मस्तान से मलंग, याने पीर-फकीर बनाना चाहते हैं। प्यारे, खुदा ने तो तुझे वो चोला बख्श रखा है कि स्साली अच्छी-अच्छी औरते तेरी चम्पी-मालिश करें, मगर तू बेवकुफ है कि कुतियों के साथ पड़ा रहता है.... चल उठ, खामखा मेरा यार परीशान कर रहा। अबे, कादर, जरा अद्दी तो दे मस्तान को..."[२९]

इस पर मस्तान उनको कहता है..."अरे, मेरे बाप, ताऊ, कचड़पट्टी पर पड़ा हुआ कुत्ता इब्बू मस्तान तो तुमसे देखा न गया। अब स्सालो, तुम मुझ चोट्टे को पीर-फकीर क्या बनाओगे, अपनी भैन के।..."[३०] इस पर

नागप्पा ने लात नहीं मारी। हाथ पकड़कर नबीपाड़े की ओर ले चला....''अबे यार मस्तान ! माँ-भैन की गालियाँ फिर देते रहना, फिलहाल जरा हमारे साथ तो चला चल और फिर देख, तुझे हम मस्तान से पीर मलंग बनाते हैं, या नहीं।''[३१]

और देखते ही देखते इब्बू मस्तान इब्बू मलंग हो जाते हैं। ''नबीपाड़े के एक कोने में उस कुतिया या शानदार मजार बना दिया गया है। हर समय नयी रेशमी चादरों और फूल-मालाओं से मजार ढंका रहता है। सारे बांदरा और आसपास के उपनगरों में यह खबर फैल चुकी है कि इब्बू मस्तान के रूप ख्वाजा अजमेर वाले पीर बंगाले वाली जादू की बेगम को साथ लिए घूमते फिरते थे। उसे मामूली-सी कुतिया समझकर, रमजान और कादिर ने छुरा भोंक दिया, तो अब हालत यह है दोनों की कि चार दिनों से टट्टी-पेशाब बंद है और जबान को यों लकवा मार गया है कि ''या खुदा, या पीर, या मलंग कराने के अलावा और कोई बात जबान से फूटती ही नहीं हैं। लाख-लाख माफिया मांगते हुए नागप्पा दादा ने इब्बू मलंग को नबीपाड़े में ही रोक लिया है और बंगालेवाली का खूबसूरत मजार बना दिया है। बंगालेवाली की रूह तो उसी समय इस तरह मलंग की आंखों में समा गई थीं, जैसे कोई जलता हुआ शोला पानी के तालाब में डूब गया हो, मगर उसका पाक जिस्म मजार के नीचे दफन है और जो वहां मत्था टेकता है, मन मांगी मुराद पूरी होती है।''[३२]

अजमेरवाले ख्वाजा उर्फ इब्बू मलंग और बंगालेवाली की मजार का ऐसा समा बंधता है कि इब्बू मलंग और मजार पर मत्था टेकने दूर-दूर कोलीबाड़ा, भिंडी बाजार, पिल हाउस, कादीबाड़ी, हाजीअली, मुंगरापाड़ा, डोंगरी, वरली, मसजिद बंदर यानी...लगभग सारे मुंबई शहर ... से औरत-मर्दों का रेला बंध जाता है। मस्तान को लात मारने वाले नागप्पा और रमजान-कादिर वगैरह इब्बू मलंग के तलुवों की मैल निकालकर अपने माथे से लगाते हैं और मत्था टेक-टेक कर सिजदे करते हैं, तो देखने वाले भी अपना-

PITh
11435

अपना मत्था टेक देते हैं। इबादत हुसैन सिर्फ घूरता रहता है, लेकिन जब नबीपाड़े की सुलतानी भंगिन मत्था टेकने लगी, तो उगलने तक पी हुई दारू और आंखों में चरस की जलन होने के बावजूद, इब्बू मस्तान कुछ होश में आ गया और ''हत्त, तुझ कमीनी का खसम बनूं'' कहते हुए अपनी लुंगी को कंधों पर चढ़ा लिया तो सुलतानी भंगिन ने श्रद्धापूर्वक अपनी आंखों को मूंद लिया और दुबारा मत्था टेककर लौटने लगी तो गली में नागप्पा दादा और रमजान ने उसे घेर लिया। नागप्पा ने पूरे पाँच का पत्ता उसकी हथेली में थमा दिया और कानों में फुसफुसाकर कुछ कहा। और जब ''क्लोजिंग'' का आंकड़ा आ गया और संयोग से तिग्गी खुली तो मुलतानी सारे नबीपाड़े में शोर मचाती हुई दुबारा मलंग के कदमों पर मत्था टेकने पहुंच गयी... ''या मेरे पीर, या मेरे मलंग, मेरे गुनाहों को बख्श।'' और लोगों के पूछने पर कहने लगी...

''अरे मुझ कमीनी की औकात ही कितनी हुई, मेरे मौला, मेरे पीर-फकीर ने लुंगी उठाकर दरसन दिखाए, तो मैं उल्लू की पठ्ठी शरम के मारे गलियाँ देने लगा। मगर फिर ख्याल आया कि मेरे पीर-फकीर ने तो मुझे ''आंकड़ा'' दें दिया है। लगा आई अठन्नी का डबल आंकड़ा, तो वहीं इक्के से तिग्गी का नम्बर आ गया, मेरे मौला, मेरे मलंग।''[३३]

कुतिया का मजार बनाते समय मस्तान ने नागप्पा दादा से कहा था...''नागप्पा दादा, यार, मुझे तू कैसे पीर-मलंग बनाएगा, मेरे में तो ऐसा कोई हुनर या चमत्कार नहीं ?''[३४] तो उसके जवाब में नागप्पा ने हंसते हुए कहा था... ''अबे मस्तान, तूने जो बेमिसाल हुलिया बना रखा है अपना और जबान पर आबेजमजम का पानी चढ़ा रखा है, इससे बड़ा हुनर और क्या होगा बे?.... देख, तेरा काम और कुछ करना नहीं है। पहले हम उर्स भरवाएंगे, खैरात बंटवाएंगे। फिर सट्टे के आंकड़े बांटने शुरू कर देंगे। तेरा काम सिर्फ इतना रहेगा कि कोई अगर तुझसे आंकडा मांगने लगे, तो जो मुँह से आए, बकते ही चले जाना और मां-भैन-जोरू की गालियां देते जाना।

मौके-बेमौके एकदम मादरजात नंगा हो जाया करना और हाथ-पांवों को अजीब ढंग से हिलाया करना। बाकी का काम हम खुद संभालगें।''[३५]

मजार बनाने के बाद पहली ही पड़ती जुमेरात को बंगालेवाली की मजार पर उर्स जुड़ गया। लगातार तीन दिन, तीन रातों तक कव्वाल पार्टियाँ ''मुझको पैगाम चला आया है मदीना से'' और ''हाजी मलंगशा, धुले, भूल न जाना'' आदि कव्वालियों की धूम मच गई। इसके अलावा शायर आजाद ने एक नयी कव्वाली इधर बनायी थी....''इब्बू मलंगशा तुझको लाखों सलाम बंगालेवाली तुझको लाखों सलाम।'' वह भी बराबर रंग लायी। इस प्रकार कुछ ही दिनों में पूरे मुंबई और आसपास के नगरों और गांव-खेड़ों में इब्बू मलंगशा और बंगालेवाली के चमत्कारों की कहानियाँ लोगों में फैलने लगीं। जिनका काम हो जाता वे बत्तीस गुना प्रचार करते और जिनका नहीं होता उनको अपने यकीन पर ही सुबहा होने लगता। लगभग इसी प्रकार की तरकीब नागार्जुन कृत उपन्यास'' ''इमरतिया'' में जमनिया मठ के बाबा के संदर्भ में मिलती है। जिस प्रकार जमनिया बाबा के कारण उनके मठ से जुड़े हुए लोग मालेतुजार होते हैं, ठीक उसी तरह यहाँ नागप्पा एण्ड पार्टी इब्बू मलंग के नाम पर काफी सारा नामा कमा लेती है।

अब इब्बू मलंग के पास तरह-तरह के सट्टेबाज लोग आते हैं और आंकड़े मांगते हैं। खुद नागप्पा के गिरोह के लोग आ-आकर रेशमी चादरें मजार चढ़ाते हैं, और नोटों की मालाएं कदमों पर चढ़ाने लगते हैं। यह माल तो उनको ही वापस मिलने वाला है, पर उनकी देखादेखी बहुत-से दूसरे लोग भी ये सब करते हैं। जब लोग नोटों के बंड़ल चढ़ाने लगते हैं तब इब्बू मलंग करके उन्हें लात मारते हुए बड़बड़ाता है...''अबे, ओ अपनी अम्मी के खसमो ! स्सालो, दुनियाबी फरेब मेरी नजर के सामने काहे को लाते हो, हरामजादों ! ले जाओ, घुसेड़ दो अपनी.....''[३६] मगर कभी-कभी गालियों के अनुसार ही हाथों के संकेत भी करने लगता है। कभी-कभी नंगा होने लगता है। पर तभी इब्बू मलंग को लगता है कि सामने मजार पर पड़ी रेशम

की चादर जोरों से हिल रही हैं और तब वह अपने पांवों को समेटकर लुंगी को नीचे कर देता है।

पहले जहाँ उसे रहमानी होटल से कुछ बचा खुचा खाने को मिल जाता था, उसके स्थान पर अब उसे खूब माल-मलीदा खाने को मिलता है। कभी रात को ''शेरे-पंजाब'' होटल से मंगाया साबुत मुर्गा मिलता है पराठों के साथ, तो कभी छोटे (बकरे) गोश्त की शहंशाही बिरयानी और कभी खुश्क तो कभी तरीदार पापलेट, बांगड़ा मछलियों के डोंगे और बासमती। दिनभर में दो बोतल दारू मिल जाती है और चरस इतनी कि आंखों की पुतलियाँ बाहर को निकल आती हैं। इधर नागप्पा खुद इब्बू मलंग को खूब इज्जत बख्शने लगा है। वह सुलतानी भंगिन को अपनी कोठरी में बुलाकर, आधी रात के बाद मलंग की सेवा के लिए भेज देता है।

लेकिन इधर इब्बू मस्तान की रूह पीर-फकीर की तरह वैरागी होने लगी है। तमाम-तमाम जिस्मानी नशों के बावजूद उसमें रूहानी जज्बा उभरने लगता है और वह खुद बंगालेवाली की मजार पर मत्था टेक-टेक कर अपने गुनाहों की माफी मांगता रहता है। अकेले में बंगालेवाली की मजार पर मस्तान कहता है...''मेहरबान, घूरे पर पड़े इब्बू मस्तान को पीर-मलंग तेरी ही कुर्बानी और दुआओं ने बना रखा है। तेरी ही दयानतदारी के टुकड़े खा रहा है तेरा पिल्ला, बंदापरवरी। जो भैन के कटड़े इब्बू मस्तान को देखते ही थू-थू करने लगते थे, वे ही साले हरामजादे इब्बू मलंग की पेशाब से गंदी टांगों पर चम्पी-मालिश कर जाते हैं। मगर तेरी निगाह के सामने कभी-कभी मेरी रूह बड़े जोर-जोर से कांपने लगती है, मेहरबान! तेरे आगे मै नाचीज हूँ, मेरे गुनाहों को बख्श, मुझ पर रहमोकरम का साया बनाए रख, मेरी चशमेनूर।''[३७] और यहां मिलते है कहानीकार मटियानीजी हमें। मलंग का यह कथन कहानी को एक ऊंचाई पर पहुंचा देता है। नागप्पा और रहमान कादिर को लिए तो वह मजार एक मजाक है, एक कुतिया की मजार है, पर इब्बू मलंग के लिए तो वह असली बंगालेवाली की मजार बन जाती है।

इधर कुछ दिनों से इब्बू मलंग का ध्यान शकुन्तला घाटन की ओर बरबस खींच जाता है। शकुन्तला सुलतानी की पड़ोसिन है और इधर कुछ दिनों से मजार की ओर खूब हसरतभरी निगाहों से देखती है। उसके पति माधोराव की मौत ''लोकल-ट्रेन से कटने से हुई थी। किसी तरह लोगों के घर के बरतन-भांडी करके वह अपना तथा अपने बच्चों का पेट पालती है। तीन बच्चों के बावजूद शकुन्तला की मेहनत से तमतमायी हुई कांठी कसी हुई घोड़ी-सी लगती है। इधर इबादत हुसैन में एक नयी शुरूआत हुई है। शकुन्तला अब उसके सपनों में आने लगी है। शकुन्तला ने सुलतानी से सुन रखा था। उसके मन में ख्याल आता है कि जो मलंग भंगिन को आंकड़ा दे सकते हैं, उसे क्यों नहीं देंगे? तीन बच्चे हैं, चौथा आने वाला है। शायद दो-तीन महीनों तक काम पर नहीं जा सकेगी और तब छोटे-छोटे बच्चे भूख से दम तोड़ देंगे। यह अहसास ही शकुन्तला को खाए जा रहा है। अतः अपने पति को सट्टे से बरजने वाली शकुन्तला खुद आंकड़ा लेने चली जाती है। चरस के नशे में शकुन्तला के सिर को उपर उठाने के बदले उसकी लुंगी उठ जाती है और अपनी गाढी कमाई के तेईस में से बीस रूपये उसने ''इक्के-से-दुग्गी'' और ''दुग्गी से इक्के'' के डबल आंकड़े पर लगा दिये थे। ''ओपन'' के आंकड़े में ''दुग्गी'' आ चुकी थी और अब ''क्लोजिंग'' के आंकड़े का इंतजार था। ''इक्का'' आ गया तो बहत्तर छक्के... शकुन्तला बाई के पांव हिसाब लगाते-लगाते थक जाते हैं। बंगालेवाली की मजार पर चढ़ानेवाली चादर और मलंगशा की लुंगी का हिसाब भी शकुन्तला लगाती है। लेकिन पेपर वाला चिल्लाता हैं... ''दुग्गी से सत्ते का आंकड़ा खुल गया और इसके सुनते ही शकुन्तला के पैरों तले की जमीन खिसक गयी। और तब शकुन्तला घाटन मजार पर जाकर इब्बू मलंग को बुरी तरह से फटकारती है...''अबे, ओ मलंग। अबे मस्तान ? अबे, ओ चोर गिरहकट। घुस जाए बंगालेवाली की पूँछ तेरी महतारी के। अबे, ओ हरामजादे, कर दिया तूने आज मुझ विधवा-लाचार रांड़ को हलाल।''[३८] लोगों को हजार-

हजार गालियाँ सुनाने वाले मलंग के मुँह से कोई बोल नहीं फूटता है। गालियों की जगह केवल इतनी बात उसके मुँह से निकलती है....''क्योंरी, मैंने कब दिया था तुझे आंकड़ा ?'' उसके जवाब में दहाड़ मारकर रोते हुए शकुन्तला कहती है...''क्यों? उस समय तो तू बेशरम अपनी लुंगी को अपनी महतारी के लहंगे की तरह, फटफटाते उपर को उठा रहा था ? और अब क्योंरी, क्योंरी'' चिल्लाता है? ठैर, मैंने जो सारे मोहल्ले में नहीं बताया कि यह मलंग चोट्टा बना हुआ पीर है, असल में तो झूठा-लबार चारसो बीस है । ठैर, मैं तेरी सुलतानी भंगन के साथ की बदफेली का भी भंड़ाभोड़ करूंगी। अरे, ओ मस्तान, कुल बाईस रूपये तो मैंने अपने कुत्ते के पिल्लों का पेट पालने को बचा रखे थे...अब बना दे मेरे बच्चों के लिए भी यहीं एक मजार और जिन्दा ही दफना दे मुझ कुतिया को भी यहीं पर। और फिर लुंगी उठा-उठाकर दे सट्टे के झूठे आंकड़े और दारूचरस पीकर लिपटा रह सुलतानी भंगन की चूतड़ों से...हत्त, तेरे लबार हरामजादे की।''[३९]

शकुन्तला बाई के इस पुण्य-प्रकोप से मलंग पूरी तरह से हिल गया और जो नागप्पा शकुन्तला पर चिल्ला रहा था और उसे छुरा भौंकने की बात कर रहा था, उसके सामने खड़ा होकर कहता है... तू परे हट बे, दोजख के कुत्ते ! स्साला बड़ा आया पीर-फकीर की दुआ देने वाला। तू कौन है अपनी भैन का कट्ड़ा, मुझे पीर-मलंग बनाने वाला ?.... यह बेचारी महतारी ठीक कहती है कि मैं मलंग नहीं चोर-लबार और मक्कार हूँ।.... और तू भी पक्का बदमाश और जालसाज है मादर....''[४०] कहानी का अंत इन शब्दों के साथ होता है....''ल्ले, कसाई कुत्ते, उस दिन तैंने हरामजादे, मेरी कुतिया की पीठ पर छुरा घुसेड़ दिया था, आज अपनी भैन के कट्ड़े, मेरे ही घुसेड़ के मुझे यहीं दफना दे । बना दे मेरा भी मजार मेरी कुतिया की बगल में...'' धीरे-धीरे चरस और आक्रोश से उपर को चढ़ी हुई पुतलियां नीचे को बैठती चली गई और इबादत हुसैन पूरी तरह फूट-फूट कर रो पड़ा।''[४१]

जहाँ तक कहानी में मुस्लिम-संदर्भ का सवाल है उसके केन्द्र में इबादत

हुसैन उर्फ इब्बू मस्तान उर्फ इब्बू मलंग है । इसके अलावा रहमान, कादिर - सईदन, करीमुल्ला आर्डखाला, गुलअहमद पठान जैसे पात्रों का उल्लेख भी मिलता है। अजमेर वाले ख्वाजा, बंगालेवाली की मजार, इब्बू मलंग, उर्स कव्वाली, मजार पर चादर चढ़ाना आदि से मुस्लिम सभ्यता उजागर होती है । ''रहमोकरम,'' ''लानत-मलामत'', ''तरीदार गोश्त'', ''देग'', ''तौबा'', ''तोहमत'', ''हत्वा की बेटी'', ''बेजुबान जानवर'', ''मशक्कत'', ''बदजात औरत'', ''खसम'', ''फकीराना तबीयत'', ''चचाजाद बहन'', ''साबुत मुर्गा'', ''छोटे का गोश्त'', ''शंहशाही-बिरयानी'', ''बंगालेवाली की रूह'', ''बंदापरवरी'', ''दोजख'', ''आबेजमजम का पानी'' जैसे शब्द प्रयोग मुस्लिम सभ्यता और संस्कृति का परिवेश खड़ा करते हैं। इनके अलावा ''तेरी जात का मैदा मारू'', ''तेरे रहमोकरम का कद्दू मारूं'',''आरिया हूँ'', ''हियां '', ''अम्मीजान'', ''तेरी अम्मीं का कद्दू'', ''तुझ कमीनी का खसम बनूं'', ''अपनी अम्मीं को खसमों'' जैसे प्रयोग, गालियां तथा ''टोन'' भी मुस्लिम माहोल को खड़ा करने मे सहायक होते हैं ।

## (४) गरीबुल्ला :-

''गरीबुल्ला'' कलई के बर्तनों की नगरी मुरादाबाद का एक माना हुआ कलईगीर कारीगर है। मुरादाबाद में उसका अच्छा खासा व्यवसाय था। वह अपनी बेगम शमाबी तथा अम्मीजान को बेइन्तिहा प्यार करता था । ये दोनों उसकी दो आंखें थीं और दोनों पर अपनी जान छिड़कता था। कई बार परिवारों में सास-बहू के झगड़े व्यक्ति को परेशान कर डालते हैं पर ''गरीबुल्ला'' तो उससे भी बरी था, क्योंकि उन दोनों की भी आपस में बहुत पटती थी । यों मुरादाबाद में गरीबुल्ला अपने इस छोटे-से परिवार में सुख-संतोष की जिन्दगी बसर कर रहा था । उसको अपने इस संसार में बहिशत दीख रहा था । पर खुदा बड़ा कारसाज है । उसे कई बाद अपने बंदों का ऐसा सुख बर्दाश्त नहीं होता, या यों कहें कि दुनिया वालों की नजर लग जाती है।

शमां बी की मुहब्बत का साया गरीबुल्ला पर मुरादाबादी कलई की तरह चढ़ गया था और वह सोचता था कि यदि वह कलईगीर की जगह कातब या कलमदा होता तोशमा बी की नक्काशी में अपना सारा हुनर लगा देता। इस प्रकार मां और बीबी दोनों की मुहब्बत से गरीबुल्ला मालामाल था, लिहाजा वह कहना था कि किस अनाड़ी ने उसका नाम गरीबुल्ला रख दिया, उसका नाम तो अमीरूल्ला होना चाहिए था।[४३]

"गरीबुल्ला" की जो कहानी है, उससे एक सीख और मिलती है... प्यार या मुहब्बत में भी आदमी को "करकसर" से चलना चाहिए और किसी को भी बेशुमार या बेइन्तिहा प्यार नहीं करना चाहिए, क्योंकि ऐसे प्यार करने वालों को जमाने की नजर लग जाती है। तभी मीराबाई कहती हैं.... "जो मैं ऐसा जानती प्यार किए दु:ख होय। नगर ढिंढोरा पिटती, प्यार। दोष शुरू से मेरा चाहा मैंने तुझको ज्यादा।"[४४] प्रस्तुत कहानी का गरीबुल्ला भी अपनी मां तथा बीबी को बेइन्तिहां चाहता था और खुदा ने दोनों को उठा लिया। गरीबुल्ला बुरी तरह से हिल गया। गरीबुल्ला अपने को बहुत भाग्यशाली समझता था किन्तु भाग्य का रोलर उसके जीवन पर कुछ ऐसे फिर गया कि उसके सारे सपने चकनाचूर हो गये। पहले उसकी बीबी जन्नतशीन हो गई और फिर उसके गम में उसकी प्यारी अम्मीजान भी खुदा को प्यारी हो गई। गरीबुल्ला की धुरी ही गड़बड़ा हो गई। और जीवन की धुरी जब एक बार गड़बड़ा जाती है, तो फिर व्यक्ति का संभलना मुश्किल हो जाता है।

गरीबुल्ला के कोई औलाद होती तो शायद वह संभल सकता था, या अम्मीजान ही जिन्दा रहती तो भी उसे जीने का कोई मकसद मिल जाता। बाद में उसकी अम्मीजान उसे शायद दूसरे निकाह के लिए भी राजी कर लेती और गरीबुल्ला की बेतरतीब जिन्दगी में कोई तरतीब आती। लेकिन गरीबुल्ला के भाग्य में तो सचमुच में "गरीबुल्ला" होने का लिखा था, लिहाजा दोहरे आघातों का गम गलत करने वह मोहमयी मुंबई नगरी चला आता है। कलई की नगरी स्टील से "स्टेनलेस स्टील" के नगर मुंबई वह चला आता है।

यहाँ उसके हुनर का कोई मुल्य नहीं है। अत: अक्सर कुलीगिरी करके वह अपना पेट पालता है।

यहाँ गरीबुल्ला के माध्यम से लेखक ने मुंबई की वैभवविलासयुक्त जिन्दगी और फुटपाथ और झुग्गी-झोपड़ियों की जिन्दगी का लेखा-जोखा भी दिया है। इसमें लेखक ने आज के जीवन में प्रचार-तंत्र का जो बोलबाला है उसे भी प्रकारान्तर से बताया है। मुंबई में घसीटा हलवाई का पुराना व्यवसाय था। पंजाबी नन्दु हलवाई अपने प्रचारतंत्र से उसे किस प्रकार मात देता है यह भी लेखक ने अपनी व्यंग्यात्मक शैली में उजागर किया हैं। यथा...''शुरू-शुरू में बम्बई के ग्रान्ट रोड पर अपनी पहली दुकान खोलने के दौरान नन्दु हलवाई को बम्बई के सबसे पुराने और सबसे प्रसिद्ध घसीटा हलवाई करांची वाला से टक्कर लेनी पड़ी थी। मगर जहां नन्दु हलवाई ने बम्बई की फिल्मीस्तानी जनता की नाड़ी टटोलकर मिठाइयों की सतरंगी और डिब्बों को खारी बावली देहली के ''गर्ग एण्ड कंपनी'' के कोकशास्त्र और ''रति-रहस्य'' पुस्तकों के मुखपृष्ठ की तरह कलापूर्ण बनाने में शक्ति लगाई, वहां घसीटा हलवाई अपनी ''शुद्ध घी-मावे की मिठाई'' के भरोसे में रह गया और नन्दु हलवाई की टक्कर में बुरी तरह घसीटा गया।''[४५]

नन्दु हलवाई अपने मिठाई के डिब्बों और पैकिंग के शानदार कागजों पर अमरिका इंग्लैण्ड की ''न्यूड-मोडलों'' के चित्र छपवाता था। इस प्रकार नन्दु हलवाई की व्यावसायिक- सफलता (प्रचार-तंत्र की सफलता) घसीटा हलवाई को पीट देती है, क्योंकि लेखक के ही शब्दों में उसकी नींव में ''अक्लमंदी की इंटें'' लगी हुई है। इस बनावटी दुनिया में माल की श्रेष्ठता नहीं, प्रत्युत प्रचार की श्रेष्ठता ही रंग लाती है। इस तथ्य का वर्णन भी लेखक ने अपनी व्यंग्यात्मक शैली में बखूबी किया है....''उनके उपर पारदर्शी कागज की पैकिंग थी, जिससे डिब्बों के अंदर की मिठाई पर कम, बाहर की उभरी हुई जवानी की नक्काशी पर ज्यादा ध्यान रहे लोगों का। और इन डिब्बों की ही बिक्री सबसे ज्यादा होती थी।... शेष डिब्बों पर प्रसिद्ध मराठा चित्रकार

सुलगांवकर के राधा-कृष्ण, सीता-राम और शिव-पार्वती के युगल-चित्र छपाए जाते थे, जिनमें राधा, सीता एवं पार्वती, आदि ईश्वर- अर्द्धंगनियों को अधनंगी दिखाया गया था और जिनमें शरीर के आस-पास की चित्रकला अमेरिका - इंग्लैण्ड के ''न्यूड-माड़लों'' की मांसल-नक्काशी को भी मात करती थी।''[४६]

इस कहानी में लेखक ने बताया है कि आदमी पेट की आग और पेढ़ू की आग दोनों के सामने लाचार और बेबस हो जाता है। और इन दोनों मामलों में भी गरीबुल्ला का नसीब गरीब ही साबित होता है । कुलीगिरी करके गरीबुल्ला पेट तो किसी तरह भर लेता था, लेकिन एक दिन उसे नन्दु हलवाई की मिठाई खाने की इच्छा होती है और गरीबुल्ला मांग बैठता है... सेठ थोड़ी सी मिठाई मिल जाए गरीब को ।''[४७] मगर गल्लेदार उसे कोई भिखारी समझता है और नौकर चोखे को बुलाकर कहता है....''चोखे, इस डिब्बे में दिन का बचा पराठा-शाग पड़ा है'' मेरा, डाल दे इस भिखारी के झोले में । जरा डिब्बा दूर ही रखियों ।''[४८] हाथी को चीटियाँ लग गई, इस बदकिस्मती का कोई क्या करे, मगर हड्डियों की कीमत तो लाख ही रहेगी । मांग बैठा गरीबुल्ला ! सुसरी इस साड़े- तीन इंची जबान को दोजख की आग नसीब हो। पर गरीबुल्ला अभी इतना बेगैरत भी नहीं हुआ था कि तमन्ना करे मिठाई की और कोई उसे थमा दे रोटी-सब्जी । नफरत भरी निगाहें से टिफिन के डिब्बे को देखते हुए वह कहता है...''रखे रहो सेठ, अपना सब्जी-पराठा, मुझे नहीं चाहिए । यों ही सलाम करने खड़ा हो गया था।''[४९]

पेट की आग को शान्त करने में तो गरीबुल्ला ''गरीबुल्ला'' प्रमाणित होता है । पर कभी-कभी पेढ़ू की आग भी गरीबुल्ला के दिलो-दिमाग पर कब्जा लेती है। मुंबई में मरीनड्राइव, चर्चगेट तथा कैफे -परेड़ में भी सड़क के किनारे बेंचे लगी हुई हैं, जहां शाम को ठण्डी हवा लेने वाले लोग चक्कर काटने रहते हैं। गरीबुल्ला ने सुन रखा है कि शाम को वहाँ हवा से भी

तेज फरफराने वाली लड़कियां और चक्करदार रोमांस चलाने वाली विवाहित प्रौढ़ाएं अधिक आती हैं। ''लड़कियाँ ऐसे बूढ़ों को ढूँढती है जो अपनी विशुद्ध-वासना की तुष्टि के लिए उन्हें सिनेमा दिखा सकें, बड़े-बड़े होटलों में खाना खिला सकें।.... और प्रौढाएँ ऐसे जवानों को ढूंढती है, जो जेब से कड़के, मगर जिस्म के तगड़े हों और चंद रूपयों के लिए उनके साथ कहीं भी जा सकें। गरीबुल्ला ने ऐसे किस्से सुने हैं और कि आज कोई नेक औरत उसे भी इसी मकसद के लिए बेंच के नीचे से उठाकर अपने साथ ले चलें और उसके पास से लौटने के बाद गरीबुल्ला पंजाबी नन्दू हलवाई की दुकान से एक खूबसूरत मिठाई का डिब्बा खरीद सके। वह प्रतीक्षा में था कि किसी सैंडिल या चप्पल की हल्की-सी, जैसी कि सिर्फ औरतें ही दे सकती हैं, ठोकर उसे लगे और वह उठ खड़ा हो। कभी-कभी उसे अपनी बढ़ी हुई दाढ़ी का ख्याल आता और उसे एक निराशा-सी होती। मगर औरतों की, शिकारी औरतों की, नजर को वह इतनी कमजोर भी नहीं समझता था, कि पतीली के अन्दर की बोटियां न भांप सकें।''[५०]

और गरीबुल्ला जानता है कि दिल शरीफ है और जुबान हरामजादी हैं। गरीबुल्ला यह सब सोच रहा था कि उसकी नजर एक प्रौढ़ पारसी महिला पर पड़ी। उसके चेहरे से गुजरती हुई जवानी की झलक टपक रही थी। ऐसा कहा जाता है... औरतों के संदर्भ में-कि शानि, सुरा ओर सौन्दर्य जाते-जाते बहुत दिन निकल जाते हैं। दूसरी तरफ पुरूष जब बुढ़ियाता हैं तो बुढ़ियाता ही जाता है। गरीबुल्ला सोचता है न मिले सुसरा मिठाई का डिब्बा, या खुदा, अगर थोड़ी देर के लिए यह औरत मिल जाय। गरीबुल्ला पारसी महिला के सामने खड़ा होकर अपना हाथ बढ़ाता है कि कहाँ चलना होगा। पर गरीबुल्ला को यहां भी झटका लगता है...''पारसी महिला ने ब्लाउज के अंदर हाथ डालकर, चमड़े का छोटा-सा बटुआ निकाला और उसमें से अठन्नी निकालकर गरीबुल्ला के हथेली पर रखते हुए वह बोली.... ''जिस होटल में भी तुम्हारा मरजी पड़े, बाबा! पेट-भर खाना खाओ और हमारा फिरोज-शा

साहब के लिए दुआ करो।''[५१]

मगर गरीबुल्ला तेजी से अपनी हथेली को पीछे खींच लेता है। वह इतना बेआबरू भी नहीं हो गया है कि तमन्ना करे औरत की और मिले उसे अठन्नी। लिहाजा ''मुझे कुछ नहीं चाहिए मेम साहब'' कहकर वह आगे बढ़ जाता है, मगर, एक बुरी तरह से कटा हुआ हँसी का हल्का-सा टुकड़ा उसके कांपते हुए होठों से नीचे लटक जाता है....''गरीबुल्लू'' न जाने किस बेवकूफ मुल्ला ने तेरा नाम रखा।... अबे तेरा नाम तो गरीबुल्लू... याने गरीब उल्लू होना चाहिए था।''[५३]

इस प्रकार ''गरीबुल्ला'' एक चरित्र प्रधान कहानी है। मगर इसमें मुसलमानी परिवेश खूब उभरकर आया है। गरीबुल्ला, शमाबी और अम्मीजान के चरित्र अंकित हुए हैं। ''ख्वाबों में खलल डालना'', ''बैसाहिल दरिया'', ''मुर्गबाजी'', ''बेहतरीन कलईगर'', ''कातिब'', ''कलमकार'', ''बदकिस्मती का तेजाब'', ''तमन्नाओं के खूबसूरत पंख'', ''फटीचर जिन्दगी'', ''दोजख की आग'', ''नेक औरत'', ''मकसद'', ''पतीली के अंदर की बोटियाँ'', ''हरामजादी जुबान'', ''मांस-बोटी का बना हुआ शरीर'', ''मुहब्बत का कायल'', ''बेआबरू'', ''बेगैरत'', ''गरीब उल्लू'', जैसे शब्द का प्रयोग मुसलमानी तहजीब और भाषा को उकेरते हैं।

## (५) पत्थर : -

''पत्थर'' कहानी की चर्चा हम चतुर्थ अध्याय के अंतर्गत कर चुके हैं, क्योंकि उस कहानी में मुस्लिम संदर्भ तो है ही, दलित-संदर्भ भी है, क्योंकि कहानी नायक भीख मांगने का काम भी एकतबके में करता है और हमने भिखारियों और कोढ़ियों को भी दलित-संदर्भ के अंतर्गत लिया है। लेकिन चूंकि उसकी चर्चा हम यहां करने वाले थे, अत: वहां बहुत संक्षेप में उस पर दृष्टिपात किया था, यहां उसकी चर्चा अपेक्षाकृत विस्तार के साथ करने का हमारा उपक्रम रहेगा।

कहानी का परिवेश मुंबई का है। उसमें रमजानी, गफूरन, अहमदिया, मदीना चाची, करीमुल्ला, शमसुल्ला, सैफू मिस्त्री आदि मुस्लिम पात्रों की चर्चा है। किन्तु कहानी के नायक-नायिका तो रमजानी और गफूरन हैं। रमजानी एक निठल्ला और कामचोर आदमी है। वह दिन-भर घर में पड़ा रहता है। और बीबी गफूरन की कमाई पर ऐस करता है। गफूरन एक नेक, शोहर को खुदा समझने वाली मजहब-परस्त औरत है। गफूरन न जाने कितने लोगों के यहां चुल्हे-चौके का काम करती थी और रमजानी उसकी कमाई पर छैला बने घुमता था। वह गले में रेशमी रूमाल बांधकर शमसुल्ला के भट्ठे पर चला जाता था। वहाँ नौटांक अढ़ा-चढ़ा जाता, फिर नूरे की दुकान से लेता काला कांडी, सींकरी सुपारी, बनारसी जर्दे वाला पान, मुंह में दबाता और सिगरेट के कुमकुम छोड़ते हुए गाता- "तूने मेरा यार न दिलाया, मैं क्या जानूं तेरी खुदाई?"[५३]

गफूरन मेहनत-मजदूरी के दो-चार टुकड़े खाकर दिन काटती रहती थी। वह खुद लोगों की लाख लानतें, मलामते झेल लेती पर उसके चेहरे पर कभी कोई शिकन न आती और न ही अपने निकम्मे निठल्ले शौहर को गालियां देतीं या अपने नसीब को कोसती। वह तो हमेशा कहती- "या अल्ला रसूल, उन्हें राजी-खुशी रखना।"[५४] और गफूरन जैसी बीबी पाकर रमजानी पूरे मुहल्ले-टोले में अकड़ता फिरता था और दूसरे मेहनत-मजदूरी करके अपनी बीबी और बाल-बच्चों को पालने-पोसने वालों को ऊपर से सुनाता था- "यार अहमदिया, यार करीमुल्ला, बेचे जाओ चश्मे, बटन, बैलुन और आलू की टिकिया, मिर्च पकोड़े और उठाए जाओ बीबी-बच्चों के नाज-नखरें, मगर बखत पर कोई चीज न मिलते ही बीबी खसम मानने से तौबा न कर जाए, तो कहना, पिपरमिट, चाकलेट या स्कूल की फीस न मिलने पर बेटे अब्बा कबूल कर लें तो कहना... यारों ये जो तुम्हारी बीबीयां बीबियाँ हैं न, साल-दर-साल बच्दे दे सकती हैं, पर दिल को सुकुन नहीं दे सकती।"[५५]

रमजानी की गफूरन, अभी अल्ला की मेहरबानी से बिना दूध-फूटी ही थी और कोई उसके जैसी मेहनत और मुहब्बत नहीं कर सकती थीं। पर एक दिन रमजानी की जली-कटी बातों से आरिज आकर अहमदिया टोंचा मार ही देता है....''अबे, बीबी के बेटा पैदा करना कोई पान चबाकर थूक देना नहीं है। यह काम मरदों का है। खैर तू क्या मरदों के उसूलों को समझेगा ?''[५६] रमजानी को यह बात लग गई और उसके गले का रूमाल फांसी का फन्दा बन गया। और एक दिन ''या खुदा'' कहते हुए दो वक्त की नमाज पढ़के गफूरन के सिर पर प्यार का हाथ फेर कर कहने लगा-''कुरबान जाऊं तेरी हर अदा-सदा पर, मेरी बेगम, मुहल्लेवालों को हैजा हो जाए, नाक पर उस्तरा फिरा रहे हैं, बस मेरी जान, एक बेटा जो तू दे दे...''[५७]खुदा ने कैसे-कैसों की सुनी है, तो क्या रमजानी की न सुनता ? अभी दो-तीन महीने भी नहीं हुए थे कि गफूरन कपड़ों से न हुई। तो अहमदिया और करीमुल्ला की मौजूदगी में सैफू मिस्त्री को आर्डर दे दिया कि छोटे बच्चे के झुलने लायक एक पालना वह बना दे और अहमदिया की बीबी की मौजूदगी को नजरअंदाज करते हुए मदीना चाची से कहने लगा कि ''आने को तैयार रहना सरदी का मौसम रहेगा, बच्चे के लिए एक गरम टोपी जरूर बना लेना।''[५८] इस प्रकार ''नादीदे के चौदह फेरे'' की भांति रमजानी ने पूरे मुहल्ले में ढिंढोरा तो पीट दिया पर जैसे-जैसे बच्चे के पैदा होने के दिन नजदीक आते गए रमजानी को अपनी बेवकूफी का अहसास होने लगा क्योंकि तन भारी होने के कारण गफूरन न मेहनत के काबिल रही न मुहब्बत के। मटन बिरयानी की जगह दाल-रोटी भी मुश्किल से मिलने लगी और नौटांक-अद्दी नसीब होना तो दूर, सिगरेट की नौबत बीड़ियों पर पहुंची और जब वे भी मयस्सर न होने लगीं तो अहमदिया को बददुआएं देने लगा कि खामखाह साले ने उसे आसमान पर चढ़ा दिया।

एक बार बच्चा पैदा होने से पहले गफूरन ने अपनी शंका जताई कि कहीं बेटे की जगह बेटी पैदा हुई तो ? तब जलन और कुढ़न के मारे रमजानी

तपाक से बोल पड़ता है- ''मैं तो चाहता हूं कि न बेटा हो, और न बेटी। हो एक बड़ा दससेरा पत्थर और उसे मार दूं साले अहमदिया के सिर पर...''[५९] लिहाजा बेटा होने पर जब सैफू मिस्त्री पालना लेकर हाजिर हुआ तो पिछली गली से निकल लिया और मदीना चाची को कहने लगा कि ''खुदा की मेहर से बेटा मिला है और भला कहीं बेटे को भी जनाना-टोपी पहनाई जाती है? और फिर बम्बई में तो कोई सरदी ऐसी पड़ती नहीं, सुसरे इस ऊन के पिटारे का क्या होगा ?''[६०] वह तो गफूरन की दूरंदेशी कुछ काम आ गई कि उसने दो एक मालकिनों से पहले सेही दो-चार महीनों का सहारा मांग लिया था और कहीं से एक रूपया मिलता तो अठन्नी कुरती की जेब में या बुरके की किनारी में खोंस लेती थी।

बच्चा बड़ा मासूम, बड़ा खूबसूरत पैदा हुआ था। हाथ यों तंग न होता या हालत इतनी बिगड़ी हुई न होती तो यही रमजानी सबको कहता फिरता कि ''नसल की चीज यह होती है।'' मगर बेटे के पैदा होने से अपनी तंगदस्ती के कारण उसे कोई खुशी नहीं थी, लिहाजा ''उसमान'' या ''रहमान'' जैसे नाम न रखकर उसने अपने बेटे का नाम रखा..''पत्थर''!

एक दिन गफूरन रमजानी से कहती है- ''प्यार नहीं किया जाता तो न सही, पर इस बेकसूर मासूम को, पत्थर तो न कहा करो।'' इसके प्रत्युत्तर में रजमानी कहता है-''अरी बेगम, जिसके आते ही मेरे अरमानों पर, मेरी खुशियों पर पत्थर पड़ गए, उसे पत्थर न कहूँ, तो क्या हीरा कहूं।''[६१]

वस्तुत: रमजानी कामचोर और निखट्टू था। उससे मेहनत-मजदूरी का कोई काम हो नहीं सकता था। परिवार और बीबी-बच्चों की जिम्मेदारी जैसा कोई भाव उसमें कभी पनपा नहीं था। ऊपर से गफूरन जैसी भली और नेक औरत मिल गई, जिससे रमजानी की आदतें और भी खराब हो गई। गफूरन से प्रेमचंद कृत ''कफन'' कहानी की माधव की औरत की स्मृति कौंध जाती है, जो मेहनत-मजदूरी करके माधव और घीसू (बाप-बेटे) इन दो बेगैरत और बेहया लोगों का पेट भरती थी। गुजराती में इस अर्थ में

"पेट" के लिए एक बड़ा ही अच्छा शब्द देहाती भाषा में प्रचलित है- "डोझा" तो वह भली औरत इन दो बेगैरत लोगों का "डोझा" भरती थी। मंजुल भगत की अनारों तथा "महाभोज" की शिवरती (मटियानीजी) का स्मरण भी गफूरन से हो आता है। काम-काज करने वालों और परिवार के प्रति अपना उत्तर दायित्व समझने वालों के संदर्भ में रमजानी के क्या विचार है यह भी जरा रमजानी के ही शब्दों में देखिए-"अब जो ऐ मेरे बेटे गली-मुहल्ले वाले, ये जो अपने बीबी-बच्चों के गुलाम मर-मर के बीबी क चूना, कत्था और बच्चों की पिपमिंट ला रहे हैं, तो मेरी तरफ से जहन्नम में जाएं। ये चश्मे, बैलून, भजिया, टिकिया बेचने के धंधे तो अपने से होने रहे। और मजदूरी पर कमर कसी जाए, तो यह पीठ का दर्द दबाए रहता है। बाहर से जिस्म परबत का लगता है, अन्दर से एकदम कण्ड़म हो गया है।"[६२]

पर तभी एक अप्रत्याशित-सी घटना घटती है। रमजानी की पड़ोस में कादरमियां रहते थे। लंगड़े होने के कारण वे भीख मांगने का धंधा करते थे। एक दिन कादरमियां रमजानी को आकर कहते हैं- "रमजान भाई, क्या करेगा यों बच्चे को दूध-रोटी के बगैर मारके?" और गफूरन को भी समझाते हुए कहते हैं.... "और बी, तुम क्यों गम करती हो ?... बच्चा तुम्हारा है, तुम्हारा ही रहेगा, रोज शाम को तुम्हारे पास लौटा जाऊंगा। यह तो तुम्हें गवारा न होगा कि तुम्हारा बच्चा भूख से बिलख-बिलख के...."[६३] और गफूरन ने भी अपने दिल पर पत्थर रखकर बच्चा कादरमियां के हवाले कर दिया और इस प्रकार चार-पांच महीने की उम्र में ही वह बच्चा सैफू मियां के पालने में झुलने और मदीना चाची के हाथों बुनी गरम टोपी पहनने की जगह मुंबई की लोकल ट्रेनों में फिराया जाने लगा।

यहाँ कहानी का एक नया पहलू हमारे सामने आता हैकि मुंबई में नवजात शिशुओं और बच्चों का प्रयोग किस प्रकार भीख के व्यवसाय के लिए बढ़ रहा है। इस तथ्य को हम मटियानीजी की ही एक अन्य कहानी-प्यास-में रेखांकित कर चुके हैं। कादिर मियां लोगों के आगे गुहार लगाते

हैं- ''बाल-बच्चे वालों, मेरे मालिक, मेरे देने वालों ! मैं, अपने लगड़े पांव से मजबूर हूँ। नहीं तो लानत का यह पेशा न पकड़ता।... मगर क्या करूं मेरे मेहरबान, इस मासूम बच्चे की खातिर, इस जिगर के टुकड़े की खातिर, जमाने-भर की गर्दिशें अपने सिर लेता हूँ। माँ इसकी इस अभागे को जन्म देते ही अल्ला की प्यारी हो गई है, रूई के फाहे से दूध पिला-पिला कर मैंने पाला है, खुदा की अमानत समझकर, बाल-बच्चे वाले, दया और धरम वाले, मेरे मां-बाप इस बच्चे पर दया करेंगे। इस मासूम की दूध-रोटी चलाएंगे, तो खुदा आप लोगों के बच्चों की मुंहमांगी मुरादें पूरी करेगा। मेरे मेहरबान...''[६४] ऐसे किराये पर बच्चे किराने वाले कई बार बड़े क्रूर होते हैं, पर कादरमियां उस प्रकार के नहीं हैं। रोज शाम को बच्चा गफूरन को सौंप जाते थे। रमजानी को रोज की तयशुदा रकम एक रूपया नगद दे जाते थे और उपर से रमजानी से छिपा कर चवन्नी गफूरन को दे जाते थे ताकि वह बच्चे की परवरिश ठीक से करें। यों दो बरस बीत गए। गफूरन दिन में रोजी पर चली जाती। वह चाहती थी कि अब बच्चे को भीख के वास्ते न दिया जाए, पर रमजानी की नौटांक अद्दी फिर चलने लगी थी, वह भला गफूरन की बात क्यों मानता ? पर रमजानी के भीतर के शैतान का लालच दिन-ब-दिन बढ़ रहा था। एक दिन वह गफूरन को कहता है- घर-घर के जूठे बरतन घिसती फिरेगी, पर घर में जो कमाने की मशीन पड़ी है, उसे और चला रहे हैं। कुछ जानती भी हो, वह कादर बुड्ढा हमारे बच्चे से पाँच-सात रूपये रोज बना लेता है? और एक तू है, कि चवन्नी-अठन्नी के लिए दर-दर की चाकरी करती फिरेगी... मे तो कहूंगा, तू कमाना जाने, तो तेरा यह बेटा हीरा है, हीरा।''[६५]

गफूरन मेहनत-मजदूरी कर सकती थी, पर भीख नहीं मांग सकती थी। मगर वह अपने खाविन्द को खुदा मानती थी, सो उसका कहना वैसे टाल सकती थी। लिहाजा पत्थर को लेकर उसने यह काम भी किया, पर लाज-मर्यादा वाली गफूरन वेहया तो नहीं बन सकती थी। अत: पाँच-सात रूपये

की जगह पांच आने जुटाने भी मुश्किल हो गए, तब रमजानी कहता है...''खुदा के बन्दे रह कहाँ गए हैं बेगम ? खामोश बच्चे को तो मां भी दूध नहीं पिलाती है। कहती कि इस बच्चे का बाप मर गया है?''[६७]

लेकिन यह सुनते ही गफूरन आग बबूला हो जाती है और हमेशा शांत रहने वाली, अपने खाविन्द को खुदा का दर्जा देने वाली गफूरन न आव देखा न ताव और रमजानी को एक तमाचा रसीद कर देती है। रमजानी इस अप्रत्याशित घटना से हक्का-बक्का रह जाता है और अपना-सा मुंह लेकर बेटे को बगल में दबाकर निकल पड़ता है। वहाँ ट्रेन में रमजानी को दो थप्पड़ और पड़ते हैं। एक तो तब जब वह कहने जा रहा था कि ''इस अभागे की मां'' और उसी वक्त एक गुजराती खात्री द्वारा अपनी पत्नी की वेणी में पड़े फूलों की तारीफ करना-''कूलनी वेजी तारी केश-राशिना वच्चे चन्द्रमा जेवी लागे छे।''(फूलों की वेणी तेरे अलकों में चन्द्रमा सी लगती है) और तब उसके मन में विचार आता है.... एक आदमी यह है, एक मैं हूं।''[६७] और दूसरा थप्पड़ तब पड़ता है जब लोकन ट्रेन में एक सज्जन रमजानी के बेटे द्वारा उसके बच्चे का बैलून फोड़ देने पर रमजानी के बच्चे को एक चप्पत लगा देता है- ''अबे ओ भिखारी जरा बच्चे की तो संभाल के पकड़। एक-एक नये पैसे की भीख मांगेगा। दरिददर, हमारे बच्चे का एक आने का बैलून फोड़ दिया।''[६८]

और तब रमजानी एकदम बिफरकर थप्पड़ मारने वाले आदमी के मुंह पर तड़ातड़ चार तमाचे जड़ देता है-''मेरे बेटे पर हाथ उठाता है ?...तोड़ डालूंगा तेरे हाथ-पांव ! भिखारी होगा तेरा बाप !''[६९] और यह कहते हुए अपनी बीड़ियों के लिए बचाई हुई दुअन्नी उसके मुंह पर मारकर अगले स्टेशन पर उतर जाता है। उसके बाद घर जाकर गफूरन को बच्चा सौंपकर बाहर निकल जाता है। कहानी का अंत निम्नलिखित परिच्छेद के साथ होता है -

''आज मिल की ड्यूटी से छूटकर रमजानी घर लौटा, तो उसके हाथ के थैले में टाफी का डब्बा था। गली में दिखाई पड़ा तो, गफूरन दरवरजे

तक चली आई, हाथ से थैला लिया, पल्लू से माथे का पसीना पोंछ दिया। फिर हंसकर बोली-"आज तुम्हारा बेटा बार-बार पूछता था, कि अब्बा कब आएंगे।" रमजानी से टाकी का डब्बा थैले से निकालकर, गफूरन के हाथ में थमा दिया। और लापरवाही से बोला- "अरी, रहने दे अपने लौंड़े की तारीफ! वह साला क्या समझेगा किसी बाप के दिल को? वह तो पत्थर है, पत्थर। लाख गाल आगे बढ़ाता हूँ, पर एक चुम्मा देने को भी कतराता है..." "वह तो तुम्हारी दाढ़ी के कर्रे बालों से डरने की वजह से गफूरन ने रमजानी की बढ़ी हुई दाढ़ी पर अपना हाथ फिरा दिया।"[७०]

इस प्रकार सेयह रमजानी के हृदय-परिवर्तन की कहानी है। हिन्दी के कहानी-साहित्य में "मैकू" (प्रेमचंद) "मधुआ" (प्रसाद) "डाकू सिकंदर" (चन्द्रगुप्त विद्यालंकार) आदि कहानियों में हमें यह "थीम" उपलब्ध होता है। कहानी के संदर्भ में एक उक्ति बहुत ही प्रचलित है... "A story is like a horse where the start and end count most. अर्थात कहानी एक घोड़े के मानिंद है, जहां प्रारंभ और अंत का सविशेष महत्व होता है।[७१]

प्रस्तुत कहानी में दो ऐसी चोटदार घटनाएँ है जो रमजानी के जीवन की दिशा को मोड़ देती है- गफूरन जैसी मजहबी औरत द्वारा अपने शौहर को चांटा मार देना और किसी अजनबी द्वारा रमजानी को बेटे को थप्पड़ मारा जाना। इन दोनों बातों से रमजानी के आत्म-सम्मान को चोट पहुंचती है और उसके भीतर का सोया हुआ पुरूष-दर्प जाग्रत हो जाता है।

जहां तक कहानी में मुस्लिम-संदर्भ का प्रश्न है उसका समूचा परिवेश मुस्लिम है। रमजानी, गफूरन, अहमदिया, सैफूमिया, मदीना चाची, कादरमियां आदि सभी पात्र मुस्लिम हैं। "या अल्ला रसूल", "कुरबान जाऊं तेरी हर अदा पर," "मुहल्ले-वालों को हैजा हो जाए", "नाक पर उस्तरा फिरा देना", "इल्तजा", "बेगम", "खामख्वाह", मयस्सर न होना, "मटनबिरयानी", "खुशियों पर पत्थर पड़ जाना", "कुरतिया", "मरदानगी", "जनाना-टोपी", "जहन्नुम में जाएं", "माकूल खुराक",

"अम्मी-अब्बा", "खुदा आपकी मुंहमांगी मुरादें पूरी करे", "खुदा का प्यारा हो जाना" आदि शब्द, शब्द-समूह कहावतें ओर मुहावरें मुस्लिम तहजीब के उकेरने में सहायक होते हैं। इस प्रकार की भाषा या बोली का प्रयोग वहीं कहानीकार कर सकता है जिसे मुस्लिम समाज का गहरा-नजदीकी अनुभव हो ।

## (६) गोपुली गफूरन :-

"गोपुली गफूरन" मटियानीजी की एक बहुचर्चित कहानी है। जिन कहानियों को लेकर उन्होंने उपन्यास लिखे हैं, उनमें यह कहानी भी शामिल की जा सकती है । वैसे गोपुली शिल्पकार जाति की स्त्री है, जिसकी गणना अनुसूचित जातियों में होती है, अत: इस कहानी की चर्चा हमने चतुर्थ अध्याय के अंतर्गत भी की है । गोपुली को अतीव सुन्दरी तो नहीं कहा जा सकता, परन्तु उसके व्यक्तित्व में कुछ ऐसा है कि लोग उस की और पतिंगों की तरह खींचे चले आते हैं। इस कारण से अल्मोड़ा के बाजार में गोपुली सभी दुकानदारों के आकर्षण का कारण बन गई है। उसका पति देवराम ठठेरा है और उसकी तांबे की कलशियां आसपास के ज्वार में मशहूर है । इसमें जहां एक तरफ देवराम की कारीगरी की कला कारणभूत है, वहाँ किरपालदत्त पुरोहित जैसे लोगों की कृपा भी एक कारण है। किरपालदत्त पुरोहित अपने सभी जजमानों को कलशी देवराम से ही खरीदने की सलाह देते है। किरपाल दत्त को सब गुरू कहते हैं और ये गुरू देवराम पर विशेष रूप से मेहरबान है क्योंकि उसके कारण कभीकभार गोपुली के साथ शाब्दिक "फ्लर्टिंग" करने का मौका मिल जाता है। कभीकभार उसके उरोजों का स्पर्श-सुख भी गुरू को मिल जाता है। इन सब बातों की चर्चा हम चतुर्थ अध्याय में कर चुके हैं।

यहां जो मुद्दा उभरकर आता है, वह है गोपुली शिल्पकारिन का गोपुली गफूरन में परिवर्तन । किन्हीं कारणों से देवराम की असमय मृत्यु हो जाती है और उसके साथ ही गोपुली के जीवन का नक्शा ही बदल जाता है ।

रात-दिन चहल-कदमी करने वाली, चुहलबाजी करने वाली, अल्मोड़ा मेन बाजार की रौनक फीकी पड़ जाती है। गोपुली के दो बच्चे हैं- हरराम और परराम । उनको पालने की जिम्मेदारी अब गोपुली पर आ जाती है। जाति-बिरादरी वाले, सगे-संबंधी सब किनारा कर जाते हैं। किरपाल दत्त गुरू अब भी उसके कलसे बिकवा सकते हैं पर गोपुली को वह हुनर आता नहीं है । खीमसिंह होटलवाला गोपुली को शिकार का भटुआ तो खिला सकता है, पर उसके बच्चों की परवरिश उसके बूते की बात नहीं है। अल्मोड़ा बाजार के तमाम-तमाम लोग दुकान वाले व्यापारी वगैरह गोपुली के साथ गंदे मजाक तो कर सकते थे, पर संकट के समय में उसका हाथ थामने के लिए कोई माई का लाल आगे नहीं आता है । अत: अपनी तमाम मौज मस्ती, नाज-नखरे, दर किनार कर वह अहमदअली फड़वाला के घर जा बैठती है । अहमदअली चूड़ीहारा है और पहले कई बार गोपुली को चूड़ी पहना चुका है। तभी से वह उसका दीवाना था । पर दूसरे सब लोग जब ''मतलबी यार'' सिद्ध होते है, तब यही चूड़ीवाला उसे सहारा देता है । उसे निकाह पढ़कर गोपुली को बाकायदा अपनी बेगम बनाता है। अब गोपुली ''गोपुली गफूरन'' बन जाती है। यह सब करते हुए निश्चय ही गोपुली की आत्मा को क्लेश पहुंचा होगा, वेदना की वैतरणी उसे पार करनी पड़ी होगी, पर यह सब वह अपने बच्चों के खातिर कर गुजरती है। कहानी में साफ तौर पर बताया है कि गोपुली के साथ सब लोग छूट लेते हैं, पर उस छूट को कितनी ढील देनी, कितनी न देनी, उसका विवेक उसने हमेशा से बरता है और अपने पति देवराम को छोड़कर वह किसी की नहीं हुई है। लोग लार टपकाते ही रह जाते हैं और गोपुली छटक जाती है । अत: अहमदअली वाले की बेगम बनने में वह बेहद तकलीफ महसूस करती है ।

अहमदअली, हरराम और परराम का खतना करवा देता है, जिसे इस्लाम का सुन्नत कहते है । बच्चा कुछ साल का होते ही उसकी सुन्नत करवा दी जाती है । अब हरराम और परराम हसरतअली और नसरतअली हो जाते हैं।

गोपुली की सारी आजादी खत्म हो जाती है । वह अब बाकायदा एक परदानसीन बुर्खाधारी मुसलमान हो जाती है । ऐसे में मेले की बात को सुनकर उसका जी कुछ लहरा जाता है, पर जब फेस्टीवल में भी बुरखा पहनकर ही जाना पड़ेगा यह बात उसे मालूम होती है, तब उसके सपनों पर तुषारापात हो जाता है। लिहाजा जब शौकतअली की घरवाली बशीरन गोपुली से पूछती है कि उसे फेस्टीवल में मजा आया कि नहीं, तब उसके जवाब में गोपुली जो कहती है उससे उसकी मानसिक स्थिति का अंदाजा आ जाता है-"अपने मजे की बात तुम्हीं लोग जानो री ! मुझे तो जो कुछ मजा आना था, पिछले साल तक आ चुका । अब तो सिर्फ सजा बाकी रह गयी है।"[७२] गोपुली के इस कथन से प्रमाणित हो जाता है कि अहमदअली फड़वाले से निकाह वह केवल अपने बच्चों के पालन-पोषण हेतु करती है। उसमें किसी प्रकार का प्रेम या वासना नहीं है।

इस प्रकार प्रस्तुत कहानी में कहानी का पूर्वार्द्ध दलित-विमर्श से सम्बंध रखना है, और उसका उत्तरार्द्ध मुस्लिम-संदर्भ को रूपायित करता है। कहानी के उत्तरार्द्ध की भाषा, उसके मुहावरे, नाम, बुरखा प्रथा, सुन्नत करवाने की घटना आदि से कहानी में मुस्लिम संदर्भ का प्रवेश हुआ है ।

## (७) एक कोप चा दो खारी बिस्किट :-

इस कहानी की चर्चा भी चतुर्थ अध्याय के अंतर्गत दलित-संदर्भ की कहानियों में हो चुका है। इसमें मुंबई का परिवेश है और इस महानगरी में अपना तथा अपने परिजनों को पेट भरने के वास्ते दो-दो, चार-चार रूपये में जिस्मफरोशी का काम करने वाली वेश्याओं की कथा है। यहां पर हम उसके मुस्लिम संदर्भ की बात करेंगे ।

जैसा कि ऊपर कहा गया है कि इस कहानी की चर्चा पूर्ववर्ती अध्याय में हो चुकी है, अतः यहाँ केवल उसकी संक्षिप्त चर्चा होगी । कहानी के केन्द्र में नसीम है । उसकी माँ उत्तर प्रदेश के बस्ती जिले से नसीब की मारी आयी

थी। मुंबई में उसे वेश्यागिरी करके गुजारा करना पड़ता है। इसी क्रम में वह मुंबई के कुख्यात जम्सूदादा की रखैल भी रह चुकी है। नसीम का जन्म जम्सूदादा के गर्भ से ही हुआ था। इस लिहाज से हम उसे मुस्लिम कह सकते हैं। नसीम अपने बाप जम्सू दादा से नफरत करती है, क्योंकि वह उसकी मां की तरह उसे भी भोगना चाहता था। नसीम इस संदर्भ में कहती है- ''जम्सू दादा आज भी मेरे को एलेक्जेड़ा में चलने को बोलता था। मैं भैयाजी की दुकान से दो पैसे के चने खरीद रही थी। जम्सू बोला-''चल शहेन्शा होटल में बिरयानी कोफता खिलाऊंगा। ''मैंने कह दिया- तेरी बिरयानी मेरी चप्पल खाए।'' इसने मेरी मां को भी बिरयानी कोफता खिलाया था। मां कहती थी...। पर ऐसे हलकट को तो मेरी जूती भी बाप न कहें।[७३] नसीम को भी अपने पेट की आग बुझाने के लिए वेश्यावृत्ति ही करनी पड़ती थी। अभी छः महीने पहले तक उसे न्यू यजदानी रेस्तारां का आर्डरवाला हसन अली संभालता था, जो काबुल वापस जाते समय उसे एक पठानी छुरा और दो रूपये दस आने वाली मराठी चप्पल दे गया था। छुरा नसीम ने दो केकों के बदले में हसन के जिगरी दोस्त मि. पांव वाला को दे दिया था, जिससे अपनी क्रिश्चियन वाइफ की नाक काटने के बाद वह थाना हास्पिटल चला गया था। माइण्ड क्रेक हो जाने से, चप्पल उसने अपनी यू.पी. जिला बस्ती की मां को दे दिया था। ''फिर अंग्रेजी सल्तनत की ५ जनवरी, १९५६ से आषाढ़ सुदी ९ संवत् २०१३ तक वह मसीद बंदर वाले रेलवे-गोदाम के वाचमैन भगतराम के भरोसे रही, जो यू.पी. जिला सुलतानपुर का रहेवासी था, और अपनी ससुराल, यू.पी. जिला फतेपुर, जाते समय उसे एक खजूर छाप सिक्का और दो रेडीमेड ब्लाउज दे गया था। इस एक खजूर छाप सिक्के के सहारे उसने डेढ़ महीना निकाल दिया था। इस बम्बई में जहां एक खजूर छाप के लिए तो कंगले भिखारी भी पान खाया, थूक दिया, चाय पिया, मूत दिया, कहते हैं।''[७४]

इस प्रकार दिहाड़ी वेश्यागिरी न करके नसीम दो-दो, तीन-तीन महीने लोगों की रखैल बनकर रहती रही थी, पर इधर तीन दिनों से उसके पेट में

कुछ भी नहीं गया था। अत: वह रामन्ना के पास जाती है, जिसे वह सचमुच में चाहती है। रामन्ना कारवाली बाइयों को फण्टूसी कहता है, जो अपनी वासना-पूर्ति के लिए जवान कड़के-लड़कों की तलाश में रहती है ओर फुटपाथ वाली बाइयों को ''मायूसी'' कहता है। ''फण्टूसी'' चेहरों से उसे उल्फत है, इश्क है और ''मायूसी'' चेहरों को वह सिर्फ मोहब्बत करता है। यों उल्फत और मोहब्बत दोनों उसके जिगर के ए.सी. और डी.सी. है, निगेटिव और पोजिटिव हैं।[७५]

लेकिन नसीम जिन दिनों में रामन्ना को मिलती है, उन दिनों में उसकी भी कड़की चल रही थी। एक ''चौली''थी उसके पास। उन दिनों बम्बई में दुअन्नी के सिक्के को ''टपोरी'' लोग ''चौली'' कहते थे, क्योंकि उसका आकार चौकोर हुआ करता था। वह ''चौली'' नसीम को देकर कहता है कि ले इससे तू पातल भाजी और पाव खा लेना। लेकिन नसीम भी उसूलों की पक्की थी। मुफ्त में वह किसी का एक पैसा भी लेना नहीं चाहती थी। सो वह रामन्ना को कहती है ''कि पहले तुम मेरे साथ मुहब्बत करो, फिर एक कोप चा और दो खारी बिस्किट ले लेंगे।...अर्द्धा कप तुम पीना, अर्द्धा मैं पिऊंगी। एक बिस्किुट तुम खाना, एक मैं खाउंगी।... मगर पहले चल पुल के नीचे सोएंगे।''[७६]

लेकिन जैसे ही नसीम और रामन्ना पुल के नीचे मुहब्बत करने गये, रामन्ना की नजर नसीम के पेटीकोट के नाड़े पर पड़ी। नाड़े में तांबे का एक छेद पड़ा पैसा बंधा हुआ था। उसे देखते ही रामन्ना की स्मृति में उसकी बहन करावा कौंध गयी। उसे भी नाड़े में तांबे को छेद वाले पैसे बांधने का शौक था। रामन्ना के सामने पांच साल पहले की घटना ताजा हो गयी। रामन्ना की बहन करावा अपना तथा अपने भाई का पेट पालने के लिए वेश्यावृत्ति करती थी। रामन्ना को इस बात का पता नहीं था। किन्तु जब यह हकीकत उसके सामने खुलती है तब रामन्ना करावा को खरी-खोटी सुनाते हुए कहता है कि बेह्या तेने नाम पर सारा बोरीबंदर थूक रहा है। तब करावा रामन्ना से कहती

हे-''दुनिया वाले मुझ पर थूकते होंगे, लेकिन मैं तुम्हारे मुँह पर थूकती हूँ,कि तुम्हारे जैसा भैंसे-हाथी सरीखा भाई होकर भी मुझे रोटियों के लिए तन का सौदा करना पड़ता है, मन का खून करना पड़ता है...।''[७७]

और रामन्ना कुछ जवाब दे उससे पहले ही वह नागपुर एक्सप्रेस की ओर दौड़ पड़ी थी और उससे कटकर मर गयी थी। रामन्ना को उसकी लाश ही मिली थी और उसके पेटीकोट केनाड़े पर अट्ठावन पैसे बंधे हुए थे। आज नसीम के पेटीकोट के नाड़े पर बंध हुए छेदवाले तांबे के पैसे को देखकर रामन्ना को करावा की याद आ गयी। कहानी के अंत में वह नसीम को कहता है-''हमेरे जैसा डैमिश लोग होने से ही, मां-बहन का अस्मत कोई वैल्यू, कोई कीमत नहीं रखने को एक कोप चा, दो खारी बिस्किट के वास्ते जिसम का सौदा होने को। थू है हमेरे पर...नस्सू, हमेरे को माफ करना। बोलो, हम तुम्हेरा भाई, तुम हमारा सिस्टर... हमरा करावा !''[७८]

और कहानी के अंत में लेखक की यह टिप्पणी बड़ी ही सार्थक और सारगर्भित है...''रामन्ना के प्यार पर गुरू-पत्नी-भोगी चन्द्रमा शरमा कर देवत्व के अस्ताचल से नीचे लुढ़क गया था !''[७९]

कहानी में जहाँ तक मुस्लिम संदर्भ की बात है, कहानी का केन्द्रीय पात्र नसीम मुस्लिम है। कुछ उर्दू शब्दों का प्रयोग भी मुस्लिम वातावरण के अनुरूप हैं।

## (८) दो दुखों का एक सुख :-

यह मिरदुला कानी नामक एक भिखारिन की कहानी है। उसके माँ-बाप या घरवालों का कोई अता-पता नहीं है। ''मिट्टी'' कहानी की गनेशी की भांति उसे भी किसी-न-किसी दूसरे भिखारी का सहारा ढूंढना पड़ता है। इसी क्रम में वह करमिया कोढ़ी नामक भिखारी के हाथों पड़ती है। करमिया मुसलमान है। करमिया केपास अल्मोड़ा से कुछ दूरी पर एक खण्डरनुमा मकान है। उसमें वह रहता है। वस्तुत: यह कोई धर्मशाला थी, पर

बरसों से खण्डरहर हालत में थी। करमिया वहाँ रहता था। मिरदुला को जगत मिस्त्री एक मेले से ले आया था। और अब वह उससे भीख मंगवाता था, इतना ही नहीं शराब के नशे में धुत होकर कई बार मिरदुला को बुरी तरह से पीटता भी था। मिरदुला करमिया कोढ़ी और अंधे सूरदास के साथ अल्मोड़ा के मंदिरों के सामने बैठकर भीख मांगती थी। एक दिन मिरदुला अपने दिन-भर की कमाई रामलीला के चन्दे में दे देती है, क्योंकि वह कुछ धार्मिक किस्म की थी। इस बात पर जगत मिस्त्री उसे जतों और कलछी से बुरी तरह से पीटता है। मिरदुला अपनी यह करम-कहानी करमिया कोढ़ी को कहती है तब करमिया मिरदुला को समझाता है-"अरे मिरदुला, अंधे-लूले-कोढ़ियों की कोई जात नहीं होती। सब भिखारी एक जात के होते हैं और भिखारी का दु:ख कोई भिखारी ही समझ सकता हैं, लल्ली, तुझ जैसी दुखियारी कानी से ममता इस पापी संसार के सही सलामत लोगों को नहीं हो सकती। तेरी विपदा को कोई अपंग ही समझ सकता है।"[८०]

करमिया कहना तो "कोई मुझ जैसा अपंग" चाहता था, पर उसे डर है कि कहीं इस प्रकार सीधे कहने से कानी बिदक सकती है। करमिया की नजर कानी पर कई दिनों से थी और उसे यह भी मालूम था कि कानी उसके साथ अकेले कभी नहीं रहना चाहेगी। अत: वह अंधे सूरदास को भी अपने में शामिल कर लेता है। और ये तीनों उस खण्डहर में अपना डेरा डालते हैं। कानी अंधे सूरदास को ज्यादा चाहती है क्योंकि वह जवान है और उसका गला भी बड़ा सुरीला है। करमिया कोढ़ी को चाहना उसकी मजबूरी है।

ऐसे में दोनों से उसके सम्बंध बनते हैं। नैतिकता और पवित्रता विषयक उसकी सोच तो तभी नष्ट हो गई थी जब मणिहार कलारों के झुण्ड नेउसे "अपवित्तर" और भ्रष्ट करके मेले में असहाय छोड़ दिया था। और पवित्रता एक बार गयी तो क्या, दस बार गई तो क्या। फिर कोई फरक नहीं पड़ता। समाज में वेश्याओं का निर्माण ऐसे ही होता है। हालांकि मिरदुला को हम वेश्या नहीं कह सके। इस प्रकार इन दोनों के साथ रहते-रहते मिरदुला को

गर्भ ठहर जाता है । तब सूरदास और करमिया मन ही मन चाहते है कि कानी को गर्भ उनका रहा हो, और इसलिए सूरदास चाहता है कि बच्चा अंधा हो और करमिया चाहता है कि बच्चा कोढ़ी हो । पर जब दाई बच्चा जनवाने आती है तो कहती है कि ''भगवान की माया कोन जान सका। कोढ़ी-अंधों की औलाद और दीये जैसी जोत देती आँखें । गोरा-चिट्टा रंग। अच्छा हुआ कानी पर ही गया बच्चा ।''[८१] इस कहानी की यथेष्ठ चर्चा पूर्ववर्ती पृष्ठों में चतुर्थ अध्याय के अंतर्गत हो चुकी है, यहाँ उसकी चर्चा करमिया कोढ़ी के कारण है। करमिया कोढ़ी मुसलमान है । कोढ़ी होने के कारण घर से निष्कासित है। कहानी में द्योतित किया है कि कोढ़ियों और भिखारियों की न कोई जात होती है और न कोई धरम या मजहब । करमिया हिन्दू मंदिरों के आगे भी भीख मांगता है । इस संदर्भ में डॉ. यासीन दलाल (गुजराती पत्रकार, लेखक व आलोचक) के निम्नलिखित विचार ध्यातव्य है...''खूब वाचनारा लोको क्यारेक खूब सांप्रदायिक बनी जाय छे, अने कसुं नहीं वांचनार गामडानो ग्रामजन वधु उदार जोवा मणे छे।''[८२] अर्थात बहुत ज्यादा पढ़ने वाले लोग कभी-कभी अत्यंत ही साम्प्रदायिक हो जाते हैं और कुछ नहीं पढ़ने वाले ग्राम्यजन जिसे लोग गंवार कहते हैं। अधिक उदार दिखाई पड़ते हैं। क्योंकि उन्होंने कबीर के ''ढाई अच्छर पढ़ लिए होते है। कहा भी गया है...''सब से उंची प्रेम सगाई''। हिन्दू-मुस्लिम फसाद जितने शहरों में होते हैं, उसने गांवों में नहीं। (सन् २००२ के गुजरात के दंगे उसके अपवाद हैं।) पर यह जहर अब गांवों में भी फैल रहा है, या कुछ साम्प्रदायिक संकुचित मनोवृत्ति वाले लोग फैला रहे हैं, यह एक अत्यंत सोचनीय बात है। प्रस्तुत कहानी हिन्दू-मुस्लिम एकता की एक मिसाल है।

## (९) इल्ले स्वामी :-

''एक कोप चा : दो खारी बिस्किट'' की भाँति ''इल्लेस्वामी'' भी हृदय परिवर्तन की कहानी है । वहां रामन्ना था, तो यहां इल्लेस्वामी है, जो

दलित भारतीय हैं, जिसे आम तौर पर मुंबईगर ''मद्रासी'' कहते हैं। स्वामी मूलत: बेंगलोर का है । किसी समय वह भी एक कोमल-हृदय मासूम-सा बच्चा था। आश्रयहीन, लावारिस। बस एक बहन थी, यनम्मा। बेंगलोर के एक गंदे मुहल्ले में वे रहते थे और भीख मांगकर गुजारा करते थे । वेंकटेश्वर के विशाल मंदिर के दरवाजे के बाहर दोनों भाई -बहन दो पूड़ियों की भीख के लिए मंगतो की पंगत में घण्टों बैठे रहते थे । इसी प्रतीक्षा में यनम्मा चल बसी थी और स्वामी एकदम अकेला पड़ गया था। उसके बाद उसने वेंक्टेश्वर की पूड़ियां कभी खाईं। ''वेंक्टेश्वर की वह विशाल मूर्ति उसे काले भैंसे सी लगती जो अपने क्षण सींगों से उसे चीरने आ रहा हो।''[८४३] जब वेंक्टेश्वर से उसे घृणा हो गई, तब एक दिन वह मुंबई बिना टिकट के भाग आया। बिना टिकट यात्रा के कारण पुलिस ने उसे पकड़ लिया और लावारिस स्वामी को धारवाड़ की बच्चों की जेल में भेज दिया। यह धारवाड़ जेल एक प्रकार से मासूम बच्चों को गुनहगार बनाने का ट्रेनिंग सेण्टर है। धारवाड़ की जेल में ही उसे यह ''इल्लेस्वामी'' नाम भी मिला। कन्नड़ के अलावा और कोई भाषा तो उसे आती नहीं थी, अत: किसी के कुछ भी पूछने पर वह कहता ''इल्ले''। वैसे कन्नड़ में ''इल्ले'' शब्द का अर्थ ''नहीं'' होता है। तेरा नाम क्या है, तो ''इल्ले'' और तेरे पिता का नाम क्या है ? तो भी ''इल्ले''। वैसे मद्रासी छोकरे पूछते....स्वामी। अप्पा पेरन्ना ? ''अर्थात तेरे पिता का नाम क्या है, तब भी वह कहता था-''इल्ले।''मतलब कि उसे पता नहीं था कि वह किसकी औलाद है।

अब इल्लेस्वामी जिन्दगी के बयालीस साल पार कर चुका है। अतीत की स्मृतियों के साथ मासूमियत पर भी जोरदार ढक्कन पड़ चुका है। अब वह मुंबई का पेशेवर दादा है। चोरी के कई केस होने से मुंबई से वह ''तड़ीपार''है। मगर फिर भी उसकी उस्तादी में चिंचपोकली, दादर, फारस रोड़ और खेतवाही के कितने ही नौसिखुए धंधा करते हैं। दारू का , थड़ी का, कई किसम का, जिन्हें कानून नाजायज समझता है। इस संदर्भ में लेखक

की टिप्पणी मुंबई के अमूमन सभी दादाओं की कुण्डली को बता देती है- ''स्वामी में उस्ताद की पदवी के अनुकूल गुण भी है । रेलवे स्टेशनों पर खीसाकातरो से सावधान रहो'' की तख्तियां जहां लटकी रहती हैं, वहाँ भी स्वामी आसानी से पाकिट मार लेता है । और अक्सर यहीं पर मालूम पड़ जाता है कि किसके खीसे में कितना माल पानी है? क्योंकि जिनके पल्ले माल-पानी होता है, वे लोग तख्तियाँ पढ़ते ही अपना पाकिट जरूर टटोलते है और सयाना जेबकट ''भांप'' लेता है । इसके अलावा छुरेबाजी में बम्बई का नामचीन दादा है। खून करके पकड़ा भी जाए, तो पुलिस के सामने कभी कबूल न करे, भले ही मारते मारते पुलिस उसे ही बेदम कर दे।''[८४] इसी संदर्भ में आगे भी लेखक कहते हैं-

''इल्लेस्वामी की सारी जिन्दगी ही जोखिम के कामों में गुजर गई है। उसकी यह ४०-४२ की उम्र उसी पेशे के सहारे कटी है, जिसे बम्बई में दादागिरी कहा जाता है । और दादागिरी यों ही विरासत में नहीं मिल जाती, पैतृक संपत्ति की तरह उसे हासिल करने के लिए खून-पसीना एक करना पड़ता है, जेल-यात्रा करनी पड़ती है, पुलिस और दूसरे दादाओं से कमरतोड़ मार खानी पड़ती है। उस मार को पचा-पचा कर जब हड्डियाँ मजबूत हो जाती है, जब हृदय में, दया, ममता, और करूणा के कोष में, नृशंसता के कठोर पाषाण का ढक्कन लग जाता है। तब यह दादागिरी की सनद मिलती है।[८५]

कुल मिलाकर किस्सा-कोताह यह कि इल्लेस्वामी पक्का दादा और गुण्डा बन चुका है। फिलहाल वह तड़ीपार है। और तभी उसे पारसी सेठ होरमसजी का बुलावा आता है। बात यह थी कि एक गरीब मराठी विधवा लड़की होरमसजी के घर बरतन-भांड़ी घिसने का काम करती थी। होरमसजी उसके मेहनत कसे हुए सौन्दर्य पर रीझ गया था । एक दिन मौका देखकर उसका हाथ पकड़ते हुए सेठ अपनी मोहब्बत का इजहार करता है, पर वह मामूली लड़की अपनी इज्जत की दुहाई देते हुए होरमसजी के मुंह पर थूक

कर चली गई थी, नौकरी छोड़कर। एक मामूली लड़की होरमसजी के मुंह पर थूक कर चली जाती है। धन-दौलत को ही सब कुछ समझने वाले सेठ का यह बात नागवार गुजरती है और वह इल्लेस्वामी को बुलाता है और उस लड़की को उसके सामने पेश करने का काम सौंपता है। और स्वामी एग्रीमेंट के हिसाब से उस मराठी लड़की को उसके सामने पेश करता है। पर अचानक कुछ ऐसा घटित होता है कि स्वामी उस लड़की की रक्षा के लिए आगे आता है। उसके भीतर का स्वामी मर गया और फिर से बरसों पहले का वह मासूम लड़का जिन्दा हो गया । यथा -

"तूने मेरे मुँह पर थूका था, मैं अपने थूक से तेरा मुंह गंदा करूँगा।[८६]... होरमसजी एक दफा मुसकुराए, फिर एक तीखी कड़वी मुस्कराहट लिए चील की तरह लड़की पर झपट पड़े। मगर तभी स्वामी की विशाल बाहों में उनका शरीर झुलता रह गया। उन्हें लगा कि किसी काले पहाड़ से टकराए हैं। स्वामी न हंसा न टला। गंभीर आवाज में बोला-"अच्छा, रे सेठ, अगर हम इस लड़की की तरह तुम्हारी मां, या तुम्हारी बहन को यहाँ ले के आता ? कईसा क्या सेठ ? तब तुम क्या करता ? अईसे ही उसकू काटने को दौड़ता ?"[८७] होरमसजी गुस्से से चीख कर बोले "तुम साला, चोर मवाली ! तुम हमारा मां-बहन की इज्जत पर कीचड़ उछालता है। तुम...."[८८] तभी स्वामी का फौलादी पंजा होरमसजी के गले पर फांसी के फंदे सा कस गया। उसकी खूंखार आवाज गूंज उठी-"अपनी मां-बहन का इज्जत तुमकूं बड़ा लगता है, कईसा क्या?दूसरे के मां-बहन का इज्जत कुछ नहीं? हम गरीब लोग का मां-बहन का इज्जत कुछ नहीं क्या, रे सेठ?"[८९] तभी होरमसजी गिड़गिड़ाकर कहता है..."अरे, स्वामी तुम हमको मार डालेगा। क्या ? तभी, स्वामी बोलता है..." सेठ, हम तुम्हारे साथ लफड़ा करनेकूं नहीं आया। तुम बात ही ऐसा किया हमकूं गुस्सा आ गया। कईसा क्या अब वह स्वामी मर गया रे सेठ।"[९०] स्वामी कहता गया-"सेठ, कईसा क्या, हमने अपनी जिन्दगी में बहुत बड़ा जोखिम उठाया, बहुत जुल्म किया। पर अब

हमकूं लगता है सेठ, यह जिन्दगी बेकार बर्बाद किया। सच, कईसा क्या सेठ, जिन्दगी भर हमकू किसी का मुहब्बत नहीं मिला। किसी का नहीं, क्या सेठ! लेकिन अब हमकू होश आ गया है, सेठ! हमको कैसा भी एक नौकरी दे दो। हम जिन्दगी भर आपका ऐसान नहीं भूलूंगा।.. (इतना कहकर स्वामी उस लड़की की और मूड़ा बोला) यह भी लावारिस लड़की है। कईसा क्या सेठ, हम इसको अपनी बहन बनाया। अपना यनम्मा बनाया, सेठ।''[११] और उस काले पहाड़ की दरारों से पानी चू-चू कर, फर्श को गिला करने लगा।

अब यहाँ प्रश्न यह आयेगा कि स्वामी कन्नड़भाषी है और हिन्दू है, होरमसजी पारसी हैं, वह लड़की मराठी हिन्दू है। दरिद्रता और गरीबी और भीख के प्रसंगों के कारण यह दलित-विमर्श की कहानी तो हो सकती है, फिर उसमें मुस्लिम-संदर्भ कहाँ से आया ? सवाल वाजिब है। जवाब यह है कि यह दलित विमर्श की कहानी तो है ही, पर उसमें मुस्लिम-संदर्भ आयशाबाई नामक मुस्लिम वेश्या के कारण आता है और स्वामी के हृदय-परिवर्तन के मूल में भी वही है।

सेठ होरमसजी के यहाँ से पैसे लेकर स्वामी खूब शराब पीकर आयशाबाई के यहाँ गया था। अपनी विशाल भुजाओं में आयशाबाई को समेटने की इच्छा से वह आगे बढ़ता है, पर तभी आयशाबाई के झटके से वह जमीन पर गिर जाता है। चोट खाते ही स्वामी के भीतर का पशु मानो जाग पड़ता है-''की बच्ची, हमकूं धक्का मारता है? कईसा क्या, स्वामी कूं नखरा दिखाता है?.. कहते हुए स्वामी आयशा को अपनी राक्षसी बाहों में कसकर भींच डाला। आयशा पीड़ा से चीख सी उठी। उसे लगा कि आज स्वामी उसकी बुरी हालत कर डालेगा, लेकिन तभी स्वामी ने उसे धीरे से पलंग पर छोड़ दिया। आयशा ने विस्मय के साथ देखा, उस वहशी दादा की आंखों में पानी भर आया था, जैसे किसी शिलाजीत की चट्टान की कोख से पानी चू रहा हो। वह एकटक उसे देखती रह गई।''[१२]

तभी स्वामी गीली आवाज में गिड़गिड़ा उठा- ''आयशाबाई, तुम

हमकूं नफरत की निगाह से देखता है?''[१३] उस पत्थर जैसे पुरूष की नवनीत-जैसी कोमल बातों को सुनकर, आयशा का हृदय द्रवित हो उठा...''नहीं स्वामी ? तुमससे नफरत क्यों करूंगी ? इन पांच वर्षों में जितना पैसा तुमसे पाया है, किसी और से नहीं। मगर पैसा और हविश एक चीज हैं, मुहब्बत दूसरी। बिलकुल दूसरी चीज , स्वामी।''[१४] भावावेग में आयशा कहती गई...''वह ब्राह्मण बाबू आता था न इधर? कितनी मीठी, कितनी मुहब्बत भरी बाते करता था ?''[१५] स्वामी उस प्यार को पांच वर्षों में नहीं पा सका, जिसे वह ब्राहम्ण बाबू दो महीने में ही जीत के चला गया। और इस घटना ने स्वामी के हृदय को मथ डाला। उसी मंथन का नवनीत स्वामी का बदला हुआ व्यवहार है, उसका हृदय परिवर्तन है। इस प्रकार एक मुस्लिम वेश्या की सीधी सच्ची बातों ने स्वामी के भीतर सोये मनुष्य को जगा दिया। उसकी मासूमियत उसे वापस लौटायी।

## (१०)हलाल : -

''हलाल'' शब्द ही मुस्लिम-संदर्भ से जुड़ा हुआ है। बकरे को या मुरघी या मुरघे को जो काटा जाता है, उसकी एक विशेष विधि को ''हलाल'' कहा जाता है। उसमें ''बिस्मिल्लाह'' के उच्चारण के बाद गले को ऐसे काटा जाता है कि पूरा सिर धड़ से अलग नहीं होता। उसे ''जिबह'' करना कहते है। ''रहमतुल्ला'' कहानी में इसका वर्णन आता है। मुस्लिम लोग ''हलाल'' का ही गोश्त खाते हैं। दूसरे कसाई (बूचड़) ''झटके'' से बकरा या मुरघा-मुरघी काटते हैं। उसे ''झटके'' का गोश्त कहते हैं। मुस्लिम ''झटके'' का गोश्त हराम समझते हैं। ''नमकहलाल'' तथा ''नमकहराम'' जैसे शब्द यहां से मुद्रित हुए हैं।

कहानी-नायक खत्तनमियां एक बूचड़ है। वस्तुत: खत्तनमियां मूलत: तो खयालीराम था। नाम के पीछे जो ''राम'' की मुहर है, उससे उसके दलित होने का सबूत मिलता है। परन्तु ख्यालीराम के मां-बाप बचपन में ही

काल-कवलित हो गए थे और खयालीराम का खयाल रखने वाला कोई न था। कुछ समय के लिए एक दयालु औरत जिसका नाम जानकी है और खयालीराम उसे जानकीताई कहता है, पालती-पोसती है, परन्तु बाद में उनकी भी मृत्यु हो जाती हे और खयालीराम पुन: अनाथ हो जाता है। कहने को तो कहा गया है... ईशावास्यम् जगह इदम अर्थात समग्र सचराचर सृष्टि में ईश्वर का वास है, पर वास्तव में क्या हम उसका पालन करने हैं ? क्या खयालीराम में ईश्वर नहीं है? पर हिन्दुओं में से कोई माई का लाल उसे संरक्षण नहीं देता। जिस जाति में पैदा हुआ है, वहां इतनी गरीबी और दरिद्रता है कि कोई दूसरे के बच्चे को पालने की हिम्मत तक नहीं कर सकता और सवर्ण समाज? वे कुत्ते और बिल्लियां पाल सकते हैं पर किसी नीची जाति के बच्चे को नहीं, क्योंकि कमीन बच्चे इंसान थोड़े होते हैं, वे तो ''सपौले'' होते हैं।

नतीजतन खयालीराम को भी अन्तत: पनाह एक मुसलमान के यहां ही मिलती है। सलामत हुसैन बूचड़ उसे अपने पास रख लेते हैं और उसे भी इसी धंधे में लगा देते हैं।

खत्तनमियां नाम के ही खत्तनमियां थे, क्योंकि उनका खतना या सुन्नत नहीं हुई थी। बावन साल तक की उम्र तक उनकी शादी भी नहीं हुई थी। बावन साल की उम्र में उनकी शादी सलमा बीबी से हुई। शादी क्या, एक तरह से उन्होंने उनको रख ही लिया था। पर सलमा बीबी को तपेदिक की धुन लगी हुई थी। उन दिनों तपेदिक जानलेवा बीमारी थी, और आज भी गरीबों के लिए तो वह जानलेवा ही हैं।

सलमा बीबी को रख लेने के बाद खत्तनमियां ने भास्कर पंडित को दिखाया था। तब पंड़ित ने कहा था-''हालांकि तुमने यह नियामत उम्र ढ़लने में पाई है। मगर फिर भी तुम्हें औलाद जरूर मिलेगी।''[१६] मगर खत्तनमियां जुलाई महीने में सलमा बीबी को लाये थे और दूसरे ही वर्ष जनवरी में सलमा बीबी कब्रनशीं हो गई। छ: ही महीने हुए थे। खत्तनमियां को उसका गहरा

सदमा बैठ गया। एक महीने तक दुकान नहीं खोली। महीने बाद एक बकरी हलाल की तो उसकी बच्चेदानी में दो ललछौंहे गहरे बैंजनी रंग के भ्रूण साफ-साफ दिख रहे थे। खत्तनमियां को लगा कि मरने वक्त कहीं सलमा बीबी भी आस से तो नहीं थी ? और इसी गम में खत्तनमियां भी दम तोड़ देते हैं।

## (११) सिने-गीतकारः-

कहानी नायक "अलंकृत" हिन्दी एक गीतकार है। यह उसका उपनाम है। वह लखनऊ का है। लखनऊ की साहित्यिक गोष्ठियों में उसके गीत धूम मचा देते हैं। उसके कुछ गीत हिन्दी की पत्र-पत्रिकाओं में भी प्रकाशित हुए थे। वह सोचता है...."जब छतियां से रतियां, बतियां, पतियां और नजरिया से सेजरिया और गुजरिया की तुकें मिलाने वाले यहां प्रसिद्धि के आसमान में पूनम के चांद बने हुए हैं। तो वह तो हिन्दी का प्रतिभाशाली गीतकार है।"[९७] ऐसे में अलंकृत का एक उर्दूदा दोस्त उस्मान उन्हें कहता है-"यार, तुम तो तलतमहमूद के लिए गाने लिखने के लिए पैदा हुए हो, मुझे हिन्दी जबान बड़ी अजीज है, कि जिसमें ऐसे प्यारे, दर्द-भरे गीत लिखे जाते हैं।"[९८] और एक उर्दूदां के मुँह से अपनी तारीफ सुनकर अलंकृत सोचने लगता है कि यदि तलत, रूकी, या लता मेरे गीतों को गाएं तो ? सोने में सुहागा, या मृगनाभि में कस्तूरी न हो जाए ? और इन्हीं सब विचारों के कारण अलंकृत चने के झाड़ पर चढ़ ही जाता है। मतलब कि मुंबई पहुँच ही जाता है। वहाँ पहुँचा तो "शालीमार" होटल में ठहरा था, मगर चार पखवारों में मुंबई के कई स्टुडियों की खाक छानने के बाद, नौबत यह आ पहुँची कि उसे जोगेश्वरी के भैसों के बाड़े में रहने वाले मटरूसिंह चौधरी के यहां आश्रय लेना पड़ रहा है। मटरू चाचा के यहाँ आने के बाद अलंकृत इस निर्णय पर पहुँचा था कि कहीं नौकरी ढूंढेगा और कुछ पैसा जमा होते ही लखनऊ वापस चला जाएगा। पर ऐसे में एक दिन मटरू चाचा उसकी बुझती मशाल में तेल डाल देते

हैं...''अरे भाई! जो फिलममां कवित्त लिखने का विचार होवे तो हम डीरेक्टर घोष बाबू से बातचीत करा देवें?''[९९]

और अंलकृत की आँखों में फिर एक बार चमक आ गई-''क्या बतावें। चाचा, गीत तो हम ऐसे लिखें, कि क्या बतावें। यहाँ तो धांधल पट्टी चलती है। गीतों के नाम पर सड़ी-गली भावनाएं, अश्लील अनुभूतियों का मुरब्बा मिला कर दी जा रही है...जनता को। जनता के ही पैसे से समाज को, सिनेमा के माध्यम ही, विष-वारूणी पिलाई जा रही है। लोगों को पथ-भ्रष्ट किया जा रहा है।''[१००] सो एक दिन चाचा अलंकृत को लेकर घोषबाबू के बंगले पहुंच जाते हैं। डायरेक्टर घोष बाबू के यहां चाचा पिछले सात वर्षा से दूध दे रहे थे। यह पहचान आज काम में आ गई। घोष बाबू ने बड़े प्रेम से हाथ मिलाते हुए अलंकृत को संगीत-निर्देशक गफ्फार खां से मिलाया। घोष बाबू ''अलंकृत'' को ''ओलनकिट'' कहते हैं और फिर अलंकृत से कहते हैं-''ओलनकित'' कुछ जंचता नहीं है। फिर बड़ा ''वण्डर'' की बात है कि अपने हिन्दी का सोंग-राइटर यानी कि शायर होकर भी इंगलिश का नाम रखा है?''[१०१] अलंकृत कहने जा रहा था कि ''अलंकृत'' तो विशुद्ध संस्कृत तत्सम, अलंकार का भूतकालिक नाम है। तब घोष बाबू बीच में ही बोल पड़ते हैं...''अंग्रेजी नाम रखना कुछ बुरा नहीं। हमारा कहना यह है कि फिल्म-इण्डस्ट्री में ऐसा नाम नहीं चलेगा। अपना पहली फिल्म ''कमाले-अरबिस्तान'' के सांग-राइटर, यानी शायर का नाम क्या था, गफ्फार खां साहेब,''[१०२]

इस पर ''अलंकृत'' बिदक जाता है नाम तो मैं बदलुंगा नहीं, क्योंकि इस नाम से पिछले सात वर्षों में हिन्दी पत्रिकाओं में लिख रहा हूं और यदि बदलूंगा तो हिन्दी का ही कोई नाम रखूंगा। घोष बाबू इस पर कहते हैं कि हां, हां, हिन्दी का ही रख लो। हिन्दी में भी बड़े एट्रेक्टिव नाम हैं... जैसे दिल, आशिक, माशूक..तो अलंकृत बोल पड़ता है कि यह तो उर्दू शब्द हैं। तब एक बड़ा ही भाषा-वैज्ञानिक सत्य घोष बाबू बताते हैं कि ''फिल्म इण्डस्ट्री

में हिन्दी-उर्दू सब एक है।''[१०३]

खैर घोष बाबू अलंकृत को खां साहब की धुन पर गीत सुनाने को कहते हैं। मियांजी वहीं ''डिर-डां-डिर-डां'' वाली धुन बजाते हैं। जिस पर अलंकृत गीत की पंक्तियां सुनाता है...''सखि, आज शरद-घन छाए री ! मनभावन मीत न आए री।''[१०४] इस पर घोष बाबू कहते हैं-''इन वर्डज में कुछ जान हीं नहीं है। हां, गफ्फार खां साहब, आपके ''नजाकत'' साहब ने जो सांग इस पर बनाया था, वह इन्हें सुना दीजिए जरा ?'' इस पर गफ्फार साहब सुनाते हैं-''कैसा हाय रे कैसा ?/ रामा जी कैसा मारा।/ नजरिया का तीर?/ कि हाय अल्ला।/ गया करेजवा को चीर !''[१०५] खैर यहां काम नहीं बना। तो मटरू चाचा अलंकृत को मुंशी ''दिलबर'' के यहां से ले गए। मुंशी ''दिलबर'' फरमाते हैं-''जर्रों को आफताब बनाया है, मैंने। रूपये में बारह आने शायर फिल्म-इण्डस्ट्री को मैंने दिये हैं। इसी ''नजाकत'' को ले लो, आज आसमान पर है। चन्द साल पहले, बोरीबंदर पर तांगा चलाता था। दो पांव रोटी और चार आने नकद पर एक गीत देकर गया था, पहली बार। फिर जो मैंने प्रोडयूसरों से मिला दिया, तो सितारा बुलन्दी पर चढ़ा है। एक गीत के दो हजार मांगता है। घोष बाबू की नयी फिल्म के लिए ''नजरिया के तीर'' गाने के एक हजार रूपया दे रहे थे, तो जवाब क्या दिया है-''फिल्मशान वाले ढाई हजार देने को तैयार हैं...''[१०६]

तो किस्सा-कोताह यहा कि ''अलंकृत'' ने सारी भावनाओं, श्लीलता अश्लीलता के विचार, आत्मा की आवाज, हिन्दी भाषा की शुद्धता आदि के विचारों को छोड़कर अपना तखल्लुस ''चांद'' रख लिया और प्रारंभ में ''उपनिषद किसी की पीड़ा के/ऋग्वेद किसी की आहों का/गीतों को लिखने से पहले/इतिहास पढ़ा है आहों का ''और'' कुछ ऐसा प्यार किया मैंने/कुछ ऐसा नाता जोड़ दिया/जिसको अपना समझा मैंने/उसने अपना मुंह मोड़ लिया?'' और भी-''वह क्या जाने गीतों का दु:ख/वह क्या जाने स्वर की पीड़ा !/अन्तर्वीणा के तारों को जिसने झंकृत कर तोड़ दिया।''[१०७] जैसे

गीत लिखने वाले मुंशी दिलबर की ट्रेनिंग में ''लागी जब से नजरिया/सूनी लागे रे सेजरिया/ सैंया राजा-हो-ओ/ बलमा राजा काहे को ना लिन्हीं खबरिया ?'' और ओढ़ूं जब आसमानी चुनरिया,/ लोग कहें अलबेली गुजरिया...''[११०] जैसे गीत लिखने लगा। अर्थात जिन फिल्मी गीतों की वह बुरी तरह से भर्त्सना करता था, उसी तरह के गीत लिखने लगा। और वही घोष बाबू तब उन गीतों को ''मार्बल्स'' और ''एक्सलेण्ट'' कहने लगे। इस गीत के लिए ''चांद'' को पांच सौ रूपये मिलते हैं, दूसरे पांच सौ रूपये फिल्म पूरी होने पर मिलेंगे, ऐसा आश्वासन देते हैं। चांद, जब कहता कि कान्ट्राक्ट में तो पांच हजार लिखे हैं, तब घोष बाबू उसे समझाते हैं कि आखिर चार हजार रूपये मुंशीजी को भी तो देने पड़ेंगे।

और मजे कि बात यह है कि ये ''दिलबर'' साहब, अलंकृत जो पंक्तियाँ सुनाता है, उनमें ''स्वर'' को ''शेर'', ''अंतर्वीणा'', को ''अंतरिना'' और ''झंकृत'' को ''झिपकिट'' समझते हैं। उनकी समझ में ''अंतरिना'' कोई इंगलिश शब्द है।[१०९]

अब यहाँ फिर वही प्रश्न उपस्थित होता है कि इस कहानी में मुस्लिम संदर्भ कहां है? मुस्लिम संदर्भ मुंबई के फिल्मी माहौल में हैं, जहां उर्दूदां शायर किसी हिन्दी के कवि को पैर टिकने नहीं देते। वहां ''अलंकृत'' को ''चांद'' होना ही पड़ता है। कहानी में हिन्दी और उर्दू को लेकर काफी व्यंग्य किया गया है और इसे व्यंजित किया गया है कि यहां ''अलंकृत'' के गीत नहीं चल सकते, मजनू ठेले वाले और ''नजाकत'' तांगेवाले के गीत चल सकते हैं। और कैसे-कैसे लोग इस इण्डस्ट्री में है यह भी बताया गया है।

**निष्कर्ष :-**

अध्याय के समग्रावलोकन से हम निम्नलिखित निष्कर्ष तक सहजतया पहुंच सकते हैं -

(१) शैलेश मटियानी की कहानियों में प्रेमचंद स्कूल के हर लेखक की भांति यथार्थ मुस्लिम संदर्भ हमें उपलब्ध होता है।

(२) मटियानीजी की कहानियों में मुस्लिम-संदर्भ की दृष्टि से निम्नलिखित कहानियां रेखांकित की जा सकती है...मैमूद, रहमतुल्ला, इब्बू-मलंग, गरीबुल्ला, पत्थर गोपुली-गफूरन , एक कोप चा : दो खारी बिस्किट, दो दु:खों का एक सुख इल्लेस्वामी हलाल तथा सिने गीतकार।

(३) इनमें भी मैमूद, रहमतुल्ला, पत्थर आदि कहानियां इस दृष्टि से अधिक महत्वपूर्ण है जिनका सम्पूर्ण परिवेश मुस्लिम सभ्यता और संस्कृति को रूपायित करता है।

(४) इन कहानियों के मुस्लिम पात्रों के नाम, उनका सामाजिक परिवेश उनके रीति-रिवाज, उनकी मान्यताएं, उनकी भाषा-मुसलमानी बोली और लहजा ये तमाम चीजें उन्हें मुस्लिम संदर्भ से जोड़ती है।

(५) रोजा रखना, कलमा पढ़ना, नमाज, अजान, खतना कराना, हलाल की विभावना, तलाक की विभावना, निकाह करना, मौसेरी बहनों से शादी, बुरखा, एक से अधिक निकाह जैसे बातें हमें इन कहानियों में दृष्टिगोचर होती हैं।

(६) मुसलमानी पहनावा, मुसलमानी खाना, कबाब, कोफ्ता, मटन-पुलाव, चिकन-पुलाव, मटन-बिरयानी, चिकन-बिरयानी, मुसलमान स्त्री-पुरूषों की गोश्तखोरी ये तमाम चीजें हमें इन कहानियों में मिलती हैं।

(७) इन कहानियों में हमें कहीं-कहीं धर्मान्तरण की प्रवृत्ति भी मिलती है, लेखक यह धर्मान्तरण मुस्लिम से हिन्दू का नहीं, बल्कि हिन्दू से मुस्लिम का मिलता है। इसमें कहीं भी जबरदस्ती या जोरो-जुल्म नहीं है, बल्कि किसी न किसी प्रकार की लाचारदर्जी रही है। यह धर्मान्तरण की प्रवृत्ति हमें निम्नवर्ग की जातियों में प्राप्त होती है।

(८) मुसलमानों में भी जहां समृद्धि और संपन्नता है, वहाँ संतानों का अभाव-सा दिखता है और जहाँ गरीबी है वहाँ उनकी भरमार है। गरीबी की

समस्या यहाँ प्राय: दृष्टिगत हो रही है ।

*

संदर्भानुक्रम :-


(१) डा. पंकज बिस्ट : लेख:प्रतिभा का बलि चढ़ जाना : पहाड़ : विशेषांक पृ. १७५

(२) डा. इब्बार रब्बी : लेख : ''हम पाखंड़ी और वह....''पहाड़'' शैलेश विशेषांक : पृ.२१९

(३) कहानी : मैमूद : संकलन-त्रिज्या :पृ.१०५

(४) से (९) : वही: पृ. क्रमश: १०५, १०६, १०६- १०७, १०७, १११, ११३

(१०) दृष्टिव्य : वही : पृ. १०४-११३

(११) कहानी : रहमतुल्ला : संकलन...त्रिज्या : पृ. २०३ ।

(१२) से (१६) : वही : पृ. क्रमश: २०३, २०३, २०५, २०९, २१० ।

(१७) भूमिका : मेरी तैंतीस कहानियां: शैलेश मटियानी : पृ. १०-११ ।

(१८) दृष्टव्य : कहानी : रहमतुल्ला : संकलन - उपरिवत् पृ. १९८-२१० ।

(१९) दृष्टव्य : वही : पृ. १९८-२१०।

(२०) कहानी : इब्बूमलंग : संकलन-त्रिज्या : पृ. १४३-१४४ ।

(२१) से (३०) : वही : पृ. क्रमश: १४४, १४५, १४५, १४५-१४६, १४७, १४७, १४८, १४९, १४९,१४९

(३१) से (४१ ) वही : पृ. क्रमश: १४९, १४९-१५०, १५१,१५१ १५१ ,१५१, १५३, १५७, १५७-१५८, १५८, १५८, १५९

(४२) दृष्टव्य : वही : पृ. १४३-१५९।

(४३) दृष्टव्य : कहानी : गरीबुल्ला : संकलन-मेरी तैंतीस कहानियाँ :पृ. ११८

(४४) उद्धत : डा. पारूकान्त देसाई की काव्य डायरी से-२

(४५) से (५२) : कहानी : गरीबुल्ला : संकलन मेरी तैंतीस कहानियां:
पृ. क्रमशः ११६-११७,११६, १२०, १२१, १२१,१२१ १२३, १२३

(५३) कहानी : पत्थर : संकलन मेरी तैंतीस कहानियाँ : पृ. १४१, (५५) से (७०) : वही पृ. क्रमशः १४१, १४१, १४१, १४२, १४२,१४२-१४३, १४३, १४३, १४३, १४४, १४४, १४४-१४५, १४५, १४५, १४६, १४६।

(७१) काव्य के रूप : डा. गुलाबराय : पृ. २०६ ।

(७२) कहानी : गोपुली गफूरन : संकलन-पापमुक्ति तथा अन्य कहानियां :
पृ. ५९

(७३) कहानी : एक कोप चा : दो खारी बिस्किट : संकलन-मेरी तैतीस
कहानियां : पृ. ८३ ।

(७४) से (७९) : वही : पृ. क्रमशः ८३-८४, ८२,८४, ८६, ८७, ८७।

(८०) कहानी : दो दुःखों का एक सुख : संकलन : बर्फ की चट्टानें :
पृ. ५३७

(८१) वही : पृ. ५४५।

(८२) गुजरात समाचार : दैनिक : ''विचार-विहार'' : डा. यासीन दलाल :
दिनांक २६.८.०६ पृ. ८ ।

(८३) कहानी इल्लेस्वामी : संकलन मेरी तैंतीस कहानियां : पृ. १३ ।

(८४) से (९५) : वही : पृ. क्रमशः १३, १२, १५, १६, १६, १६, १६,१६,
१५, १५, १५,१५ ।

(९६) कहानी : हलाल: संकलन : बर्फ की चट्टानें : पृ. ५४८।

(९७) कहानी : सिने गीतकार : संकलन - मेरी तैंतीस कहानियां : पृ. ३८ ।

(१००) कहानी : सिने गीतकार : संकलन-मेरी तैंतीस कहानियाँ : पृ. ३८

(९९) से (१०८) : वही : पृ. क्रमशः ३९, ३९, ४०, ४०, ४०,४०,
४०-४१, ४१-४२, ३८-४२, ४२-४३ ।

(१०९) दृष्टव्य : वही : पृ. ४२ ।